

**TEXT FLY WITHIN
THE BOOK ONLY**

**TEXT CROSS
WITHIN THE
BOOK ONLY**

UNIVERSAL
LIBRARY

OU_180054

UNIVERSAL
LIBRARY

OSMANIA UNIVERSITY LIBRARY

Call No. H83.1
S53P

Accession No. P. G. H2433

Author शर्मा, राजनारायण . संपा.

Title पिंजरा . 1950.

This book should be returned on or before the date last marked below.

पिंजरा

(सौलिक हिन्दी कहानियों का संग्रह)



सम्पादक

पं० राजनारायण शर्मा,

हिन्दी प्रभाकर



प्रकाशक

प्रीमियर बुक कम्पनी

नई सड़क—दिल्ली

प्रकाशक—
सुखतान चन्द,
प्रीमियर बुक कम्पनी,
नई सड़ ४, दिल्ली ।

प्रथम बार: १९५०
मूल्य
एक रुपया पन्द्रह आने
१॥३)

मुद्रक—
ईश्वर चन्द, बी० ए०,
स्वतन्त्र भारत प्रेस,
४२३, कूचा बुलाकी बेगम,
एस्प्लेनेड रोड, दिल्ली ।

आजकल छात्रोपयोगी अनेक कहानी संग्रह मिलते हैं; जिनमें संग्रहकर्ताओं ने उत्तम से उत्तम कहानियों का चयन किया है। परन्तु इनमें प्रायः संग्रहकर्ताओं ने अपनी रुचि को ही प्रधानता दी है, छात्र एवं छात्राओं के रुचि-वैचित्र्य की ओर ध्यान कम दिया है। यही कारण है कि बहुत से संग्रहों में केवल मनोरंजन को सामग्री प्रचुरता से होते हुए भी जीवन के विविध अनुभवों एवं भावनाओं को स्पर्श करने वाले यथार्थ तत्व बहुत कम मिलते हैं।

प्रस्तुत संग्रह में जो कहानियों का चयन किया गया है। वह सुरुचिपूर्ण होते हुए छात्र एवं छात्राओं के जीवनादर्श के तत्वों से भी युक्त है। प्रसिद्ध-प्रसिद्ध कहानी लेखकों की कृतियाँ इस संग्रह में विद्यमान हैं, और सभी वर्ग की कहानी इसमें दी गई हैं। जिससे छात्र एवं छात्राएँ दोनों ही पूर्णतया लाभ उठा सकें। इस संग्रह की कहानियों के लेखकों का संक्षिप्त परिचय भी यथा-संभव भूमिका में दे दिया गया है जिससे कि पाठक लाभ उठा सकें।

इस प्रकार प्रस्तुत 'पिंजरा' सब प्रकार छात्रोपयोगी संग्रह है। अतः पूर्णशः है कि छात्र एवं छात्राएँ इसे पढ़ कर मनोरञ्जन के साथ-साथ जीवन की समस्याओं तथा आदर्शों के समझने में भी सहायता प्राप्त कर सकेंगे।

राजनारायण शर्मा

भूमिका

जब से मनुष्य ने योजना सोखा उसी दिन से कहानी की उत्पत्ति हुई। मनुष्य सामाजिक प्राणी है। वह अपने जीवन में सुख-दुःख, राग-विराग और भले-बुरे के घात प्रतिघात को सहता है। इस घात प्रतिघात का वर्णन ही हमकी कहानी है। जब मानव निरा असभ्य था और केवल आखेट पर अपना निर्वाह करता था तो उसने अवश्य अपने आखेट के समय की घटनाओं का वर्णन अपने साथी अथवा साथिन से किया। उसी समय से कहानी का जन्म हुआ। जब मनुष्य सभ्य हो गया तो उसने अपने वृत्त-वर्णन को अधिक सुन्दर रूप में व्यक्त करना आरम्भ किया। तभी से कथा-साहित्य की उत्पत्ति हुई। समस्त संसार में जितना भी पुराना साहित्य है सब में कथाएं विद्यमान हैं।

भारतीय आर्य साहित्य में सब से प्राचीनतम वेद हैं। ऋग्वेद में अनेक कथाएं (कहानियाँ) मिलती हैं। शुनः शेष की कथा, सरमा-पणि संवाद और यम-यमी संवाद आदि कहानी ही तो हैं। ज्यों-ज्यों मनुष्य जीवन में विकास होता गया त्यों-त्यों उसका जीवन

बहु मुख होता गया। अनेक ललितकलाओं की रचना हुई। अब तक जीवन की अनुभूति की अभिव्यंजना 'छन्दमय' थी। अब क्रमशः प्रबन्ध काव्य, नाटक, चम्पू और आख्यायिका (कहानी) आदि में भाव व्यंजना होने लगी। पंचतंत्र, हितोपदेश, दश कुमार-चरित जैसी कहानियाँ बनीं। बौद्ध साहित्य की जातक कथाओं का प्रचार हुआ।

मानवता के विकास के साथ आख्यायिका का उद्देश्य भी बदला। अब तक कहानी का उद्देश्य उपदेश प्राचीन कहानी करना था। कहानी के पात्र भी उच्चवर्ण के का उद्देश्य होते थे। राजा रानी, राजकुमार तथा राजकुमारी आदि की कहानियाँ; पशु पक्षियों में मानव बुद्धि का आरोप इन कहानियों में प्रचुरता से मिलता है। अद्भुतता का अंश इन सब कथाओं का मुख्यांग था जो पाठक को चमत्कृत करता रहा। इनमें मनुष्य की आन्तरिक संवेदना तथा उत्कंठा का उद्बोधन करने का प्रयत्न नहीं किया गया। अब तक जो कहानियाँ लिखी गई वे सब संस्कृत में लिखी गईं। बौद्ध कालीन कहानियाँ प्रायः प्राकृत तथा पाली में पाई जाती हैं। १६ वीं शताब्दी में गोकुल नाथ की 'चौरासी वैष्णवों की वार्ता' तथा 'दो सौ वैष्णवों की वार्ता' आदि कहानियाँ धार्मिक मनोवृत्ति को प्रोत्साहित करने के उद्देश्य से लिखी गईं। ये कहानियाँ ही सर्व प्रथम हिन्दी की कहानियाँ हैं। तत्पश्चात् सं० १६८० में जटमल द्वारा 'गोरा बादल' की

कहानी लिखी गई। इसमें भी इतिवृत्तात्मकता पाई जाती है।

अंग्रेजों के भारत आगमन के पश्चात् १८ वीं शताब्दी में जब फोर्ट विलियम कॉलेज की स्थापना आधुनिक कहानी कलकत्ते में हुई तो हिन्दी पढ़ाने के लिये पाठ्य पुस्तकों की आवश्यकता पड़ी। इसी अवसर पर श्री लल्लू लाल जी ने 'प्रेमसागर' और 'सिंहासन बत्तीसी' की रचना की, तथा सदल मिश्र ने 'नासिकेतो-पाख्यान' लिखा। मुंशी सदसुख लाल ने 'मुख सागर' की रचना की। इशाअल्लाखाँ की 'रानी केतकी की कहानी' इस समय की प्रथम मौलिक कहानी है। इस समय से आधुनिक कहानों का प्रारम्भ हुआ। १८ वीं शताब्दी के अन्त में राजा शिवप्रसाद ने 'राजा भोज का सपना' लिखा और बाबू भारतेन्दु हरिश्चन्द्र ने 'आप बीती और जग बीती' कहानी लिखी। भारतेन्दु जी के समय में गद्य का अच्छा प्रचार हुआ। इस समय बंगला और अंग्रेजी से हिन्दी में अनुवाद होने लगे। भारत में अंग्रेज सब से पहले सुव्यवस्थित रूप से कलकत्ते में हो बसे, अतः अंग्रेजी साहित्य का सीधा प्रभाव बंगला-साहित्य पर पड़ा। बंगला-साहित्य ने अंग्रेजी साहित्य से कविता, नाटक उपन्यास और कहानी के पर्याप्त तत्व ग्रहण किये तथा उनके आधार पर बंगला साहित्य में रचनाएं मौलिक एवं अनुवाद रूप में हुईं। जब हिन्दी में बंगला तथा अंग्रेजी से उपन्यासों तथा कहानियों के अनुवाद होने लगे

उस समय उपन्यासों की अच्छी धूम मच गई परन्तु ये उपन्यास कोई-कोई तो इतने दीर्घकार्य थे कि निरन्तर पढ़ने पर भी सप्ताहों में समाप्त होते थे। क्योंकि युग बदल चुका था, अब मनुष्य जीवन की प्रगति इतना बहुमुखी हो गई थी कि उसे इतने बृहदाकार उपन्यासों के पढ़ने के लिये अवसर ही नहीं रहा अतः स्वभावतः ही इसकी प्रवृत्ति कहानी की ओर गई जो थोड़े से समय में ही उसका उतना ही मनोरंजन कर सकती थी। इस हेतु कहानी का प्रचार बढ़ा और लेखकों की दृष्टि इस ओर आकर्षित हुई।

हिन्दी में आधुनिक कहानी का इतिहास बहुत पुराना नहीं है। १९ वीं शताब्दी में जब 'सरस्वती', आधुनिक कहानी 'सुदर्शन' तथा 'इन्दु' मासिक पत्रिका आरम्भ का प्रचार, हुई तो इनके प्रकाशन के साथ ही आधुनिक हिन्दी कहानी का सृजन हुआ। सन् १९१५ जून मास में श्री चन्द्रधर शर्मा गुलेरी की कहानी 'उसने कहा था' छपी। आधुनिक कहानियों में यह कहानी कथावस्तु, शैली, पात्र, उद्देश्य आदि की दृष्टि से सर्वोत्कृष्ट कहानी मानी जाती है। इसके पश्चात् किशोरी लाल गोस्वामी की 'इन्दुमति' कहानी सरस्वती में छपी। यह भी छोटी कहानियों में सर्वोत्कृष्ट स्थान रखती है। श्री प्रेमचंद जी की कहानी 'पञ्चपरमेश्वर' भी सरस्वती में जून सन् १९१६ में छपी जो उच्चकोटि की कहानी मानी गई। श्री जयशङ्कर प्रसाद जी की सर्व प्रथम कहानी 'इन्दु' पत्र में

प्रकाशित हुई। इसकी काव्य कल्पना, उल्लासमयी भावना तथा पात्रों की सजीवता ने पाठकों को मुग्ध कर दिया।

किन्तु प्रेमचन्द जी की कहानियों ने सामान्य जनता से लेकर उच्च शिक्षित जन समाज के हृदयों तक को स्पर्श किया। इनके साधारण ग्राभीण पात्रों के चरित्रों में जो स्वाभाविक मोहिनी प्रकट हुई वह रत्नजटित सिंहासनारूढ नरेशों में भी नहीं धिलती। प्रेमचन्द के पश्चात् तो कहानियों की संदाकिनी-नी प्रवाहित हो गई। भाव, भाषा, शैली, चरित्र-चित्रण आदि सब प्रकार से सुसज्जित कहानी रची जाने लगी। अब जीवन के प्रत्येक पक्ष पर तथा सृष्टि के प्रत्येक अंग पर कहानी रचने का प्रयत्न हो रहा है।

उपन्यास तथा कहानी के मूल तत्त्व एक ही हैं। वास्तव में उपन्यास तथा कहानी में कोई तन्वतः भेद
कहानी के तत्त्व नहीं है केवल आकार और कथावस्तु एवं वाता-
वरण में कुछ भेद है।

उपन्यास का आकार बड़ा तथा कथा एवं उपकथाओं से प्रसूत रहता है। उपन्यास में चरित्र उपन्यास और कहानी चित्रण विस्तृत और वातावरण की वृहदता रहती है परन्तु कहानी जीवन की किसी महत्वपूर्ण घटना का नाटकीय ढंग से संक्षेप में वर्णन है।

उपन्यास यदि एक सुन्दर उद्यान है तो कहानी एक उसके कोने में सजी सुमन-क्यारी है।

कहानी घटनात्मक इकहरे चित्रण का नाम है जो एक बैठक में समाप्त हो जाय जिसमें अधिक से अधिक एक घंटा लगे।

कथा, आख्यायिका, वार्ता, नल्प वृत्त आदि सब कहानी के ही पर्याय शब्द हैं।

वृत्तात्मक काव्य (उपन्यास तथा कहानी) के मूल तत्व कहानी के तत्व, अः हैं । १. कथा-वस्तु (प्लॉट), २. पात्र, ३. कथोपकथन, ४. देशकाल (वातावरण), ५. शैली, ६. उद्देश्य ।

उपरोक्त किसी भी एक तत्व को लेकर कहानी रची जा सकती है परन्तु बिना अन्य सहायक तत्वों की सहायता के कथा में कुछ न कुछ अवश्य रह जाता है, अतः कथा-वस्तु के साथ कथोपकथन, वातावरण और शैली होने से कहानी की पूर्णता तथा श्रेष्ठता बढ़ती है। उपरोक्तलिखित तत्वों की संक्षेप में नीचे व्याख्या इसी हेतु दी जाती है कि पाठक इसका भी कुछ परिचय प्राप्त कर लें।

१. कथा-वस्तु—कहानी में वर्णन की जाने वाली घटना को कथावस्तु कहते हैं। कथावस्तु की घटनाएँ शृङ्खलाबद्ध होनी चाहिए।

२. पात्र—कथावस्तु को निश्चित स्थान पर ले जाने में प्रयत्नशील

रहने वाले व्यक्ति पात्र हैं। पात्र की स्पष्टता कहानी की महत्ता को बढ़ाती है।

३. कथोपकथन—पात्रों के परस्पर वार्तालाप को कथोपकथन कहते हैं। कथोपकथन स्वाभाविक और उपर्युक्त होना चाहिए। कथोपकथन संक्षिप्त एवं अभिनयात्मक होने से रोचक और गतिशीलात्मक होता है।

४. वातावरण (देशकाल)—घटना तथा व्यापार जिस स्थान तथा समय में होते हैं और जहाँ पात्रों को अपना कार्य कलाप करना पड़ता है; उसे देशकाल अथवा वातावरण कहते हैं।

५. शैली—रचना चमत्कार का नाम शैली है। लेखक कहानी में पात्रों द्वारा कथावस्तु का जो वर्णन अपने शब्दों तथा वाक्यों में करता है उसी रचना-रीति को शैली कहते हैं।

शैली कई प्रकार की होती है—जैसे (क) ऐतिहासिक शैली, (ख) चरित प्रधान शैली, (ग) पत्र शैली, ४. डायरी शैली, (घ) कथोपकथन शैली।

(६) उद्देश्यः—जीवन के किसी भी अंग की व्याख्या करना ही कहानी का उद्देश्य है। जितना अधिक लोक

सम्बन्धी यह उद्देश्य होगा उतना ही अधिक
उपादेय समझा जायगा ।

वर्णन रीति से कहानी के मुख्य तीन भेद हैं ।
कहानियों के भेद (१) कथा प्रधान, (२) वातावरण प्रधान तथा
(३) भाव प्रधान ।

(१) कथा प्रधान कहानियों में चरित्र, घटना तथा कार्य की प्रधानता रहती है । श्री जैनेन्द्र जी की 'जाह्नवी' में मानो-वैज्ञानिक चरित्र के विश्लेषण हैं । यह कथा प्रधान कहानी की परिभाषा में आ सकती है ।

(२) वातावरण प्रधान कहानी में श्री भगवतीचरण वर्मा की 'विक्टोरिया क्रॉस' कहानी आती है । इसमें लेखक के परिस्थिति वर्णन का कौशल प्रकट होता है ।

(३) भाव प्रधान कहानी में भाव एवं कल्पना को प्रधानता होती है; जैसे, श्री अज्ञेय जी की 'कड़ियाँ' तथा अज्जीमबेग चरा-ताई की 'यह किसकी तसवीर है' ये दोनों ही कहानियाँ भाव प्रधान हैं ।

विषय भेद से भी कहानियों के अनेक भेद हैं, जिनमें निम्न लिखित मुख्य हैं:—

(क) पौराणिक (ख) सामाजिक (ग) जासूसी (च) व्यंगात्मक ।

(क) पौराणिक कहानियों में किसी पुराण के कथानक का आश्रय लिया जाता है, जैसे श्री बिन्दु-ब्रह्मचारी जी की 'चंबेली की एक कली' इसका कथानक पौराणिक है ।

(ख) सामाजिक कहानियों में समाज सुधार तथा किसी सामाजिक नीति का विवेचन होता है।

सामाजिक कहानियों में उपेन्द्रनाथ 'अशक' की 'पिंजरा' कहानी मुख्य है। समाज की कैसी कुरीति है? उच्च घराने की स्त्रियाँ सामान्य स्थिति की स्त्री से नहीं मिल सकती। उच्च लोग अपने नल से छोटी जाति के अनुषंगों को पानी तक नहीं भरने देते। लेखक ने समाज के इन बन्धनों का अच्छा दृश्य गिँचा है। और इन बन्धनों को पिंजरे की सप्रता देकर निस्सन्देह कहानी की सार्थकता सर्वांशतः सिद्ध की है।

श्रीमती महादेवी वर्मा का 'बीसा' कहानी भी सामाजिक है। बीसा 'कोरी' (हिन्दू जुलाहा) जाति का बालक होने पर सब की घृणा का पात्र है। उसे सदरसे में उसके सहपाठी स्पर्श नहीं करते। वह बड़ा गुरुभक्त है, हृदय का बड़ा उज्ज्वल तथा बड़ा आज्ञाकारी है, किन्तु उसके ये सब गुण समाज में उपेक्षणीय हैं। गुरु जी भी समाज की इस उपेक्षा से इसे मुक्त नहीं कर सकते।

इसी प्रकार 'अलवम' में यथार्थता को लेते हुए आदर्श गर्भित एक सामाजिक परिस्थिति के घात-प्रतिघात का वर्णन विद्यमान है।

(ग) अंग्रेजी जासूसी कहानी से अनुवादित मि० ब्लैक की बहुत सी जासूसी कहानी हिन्दी में मिलती हैं।

(घ) व्यंग्यात्मक कहानी हास्यरसपूर्ण होती है। इस दिशा में जी० प० श्रीवास्तव ने प्रशंसनीय कार्य किया है।

अज्ञोसवेग चण्णताई की 'यह किसकी तसवीर है' तथा श्री अन्नपूर्णानन्द का 'अकबरी लोटा' दोनों कहानियाँ पर्याप्त व्यंग्यपूर्ण हैं। इस प्रकार भिन्न २ विषयों पर भिन्न २ प्रकार की कहानी कलाकारों ने लिखी हैं। छायावाद, यथार्थवाद, आदर्शवाद, गांधीवाद, प्रगतिवाद आदि वादों पर भी लेखकों ने अनेक कहानियों को रचना की है। अतः हिन्दी कहानी साहित्य का भविष्य बड़ा उज्ज्वल प्रतीत होता है। कितनी ही मासिक एवं पक्षिक पत्रिकाएँ केवल कहानियों की ही प्रकाशित होती हैं। कितने ही पत्र पत्रिकाओं में कहानियाँ अनवरत छपती हैं। अब तो भारत सरकार ने भी कहानी लेखकों को पुरस्कार देने का आयोजन किया है। अस्तु पूर्णशः है कि अन्य देशों की भाँति हमारे देश में भी कहानी साहित्य की उत्तरोत्तर वृद्धि होगी।

प्रस्तुत संग्रह के कहानी लेखकों का संक्षिप्त परिचय

श्री प्रेमचन्द जी—आपका जन्म सन् १८६० ई० में मढवा ग्राम जिला बनारस में एक कुलीन कायस्थ परिवार में हुआ था। आपने बी० ए० पास अंग्रेजी में किया था दूसरी भाषा आपकी फारसी थी। आप पहिले उर्दू में कहानी लिखते थे। फिर आपने हिन्दी में सन् १९१६ से लिखना आरम्भ किया। आपका पहला नाम धनपतराय था। आपकी रचनाओं में भारतीय ग्रामीणों के हृदय की उज्ज्वलता तथा मार्मिकता अनुपम रूप से व्यंजित है। आपकी भाषा बड़ी सरल और सुबोध है। आपने भारतीय समाज का उपन्यास और कहानियों में अच्छा चित्र खेंचा है। आपने करीब १२ उपन्यास और ३०० कहानियाँ लिखी हैं। आपके प्रसिद्ध उपन्यासों में सेवा-सदन, प्रेमाश्रम, रंगभूमि तथा गबन हैं। आपकी कहानियाँ अधिकांश सब ही प्रसिद्ध हैं। 'कफन' आपकी सर्वश्रेष्ठ कहानी है।

श्री सुदर्शन जी—आपका जन्म सन् १८६६ में स्यालकोट में हुआ था। आप पहले उर्दू में लिखते थे फिर आप हिन्दी में लिखने लगे। आपकी भाषा स्वाभाविक तथा ओजस्वी है। शैली आपकी आकर्षक है। आपकी कहानियों में यथार्थता की मात्रा अधिक रहती है। वर्णात्मक ढंग की कहा-

नियाँ लिखने में आप विशेष सिद्धहस्त हैं। आजकल आप सिनेमा के लिये कहानो लिखते हैं। भाग्यचक्र आपका प्रसिद्ध नाटक है। इसका चित्र भी बन चुका है।

श्री अन्नपूर्णानन्द जी— का जन्म काशी में हुआ। आप को हास्यपूर्ण कहानो लिखने में अच्छी सफलता मिली है। आपका हास्य शिष्ट और उच्चकोटि का होता है। आप सामाजिक दोषों को हास्यपूर्ण रचना द्वारा प्रकट कर उनका उन्मूलन करते हैं। आपकी प्रकाशित रचना 'मेरी हज़ामत', 'सगन रहू चोला' तथा 'महाकवि चन्दा' आदि उल्लेखनीय हैं।

भगवतीप्रसाद वाजपेयी—आपका जन्म सम्बत् १९५६ (सन् १८८६) में कंगलपुर जिला कानपुर में हुआ था। आप आजकल दारागंज इलाहाबाद में रहते हैं। आपने जो कुछ लिखा है वह अति सुन्दर है। आपकी भाषा सुबोध तथा मार्मिक है। 'महापुरुष' आपकी व्यंगपूर्ण रचना है।

श्री सच्चिदानन्द वात्स्यायन 'अज्ञेय' जी— का जन्म सन् १९०६ में पंजाब में हुआ था। आपकी प्रतिभा असाधारण है। आपका अनुभव विशद तथा अध्ययन विस्तृत है। आपकी शैली मौलिक एवं आकर्षक है। आपको कहानियों के संग्रह 'कोठरी की बातें' तथा 'परम्परा' अच्छे हैं।

श्री भगवतीचरण वर्मा—का जन्म ३० अगस्त सन् १९०३ को शफीपुरा जिला उन्नाव में हुआ। आपने इलाहाबाद से सन् १९२६ में बी० ए० पास किया तथा सन् १९२८ में

एल० एल० बी० पास किया। संवत् १९३१ में आपने कहानी लिखना आरम्भ किया था। वर्षा जो की शैली बड़ी सजीव और भावपूर्ण है। आपकी कहानियों का संग्रह 'इन्स्टालमेंट' 'चित्रलेखा' तथा 'तीन वर्ष' प्रसिद्ध हैं।

महादेवी वर्मा—का जन्म सम्बत् १९६४ (सन् १९०७) में इलाहाबाद में हुआ था। आपने एम० ए० तक अध्ययन किया है। आजकल महिला विद्यापीठ प्रयाग की आचार्या हैं। आप अच्छी कवियत्री हैं। कहानों भी आप श्रेष्ठ लिखती हैं।

श्री उपेन्द्रनाथ 'अशक' जो—का जन्म सन् १९१० में जालन्धर में हुआ। सन् १९३१ में बी० ए० की परीक्षा पास की और जालन्धर में ही अध्यापक हो गए। थोड़े दिन बाद लाहौर चले आये और एक उर्दू के अखबार के सम्पादक हो गए। आप उर्दू में कहानी भी लिखने लगे। हिन्दी में भी आप कहानी रचना करने लगे। 'हंस' में आपकी कहानियाँ प्रकाशित हुईं तब से ही आप हिन्दी में कहानी लिख रहे हैं। आपकी प्रसिद्ध कहानी 'पिंजरा' है जिसके नाम पर यह संग्रह रखा गया है।

जैनेन्द्रकुमार जैन—का जन्म दिल्ली में सन् १९०५ में हुआ। आपकी हिन्दी सेवा सराहनीय है। इनकी स्वाभाविक प्रतिभा उच्चकोटि की गल्पों के योग्य हैं। आपके 'परख' नामी उपन्यास पर आपको (५००) का पुरस्कार हिन्दुस्तान एकेडमी से मिला है। आपकी भाषा सरल और परिमार्जित है। आप

कहानी कला के मर्मज्ञ हैं। आपके 'फाँसी' और 'वातायन' उपन्यास उत्कृष्ट हैं।

संग्रह के बढ़ जाने के भय से बहुत से श्रेष्ठ कहानी लेखकों की कहानी नहीं दी जा सकी। ऐसे लेखकों के नाम निम्न लिखित हैं:—

श्री जयशंकरप्रसाद, विश्वम्भरनाथ कौशिक, बदरीनाथ भट्ट, चतुरसेन शास्त्री, राय कृष्णप्रसाद, राय कृष्णदास, सियाराम-शरण गुप्त, सुभद्राकुमारी चौहान। इन महानुभावों की कृतियों का पाठकों को हम परिचय नहीं करा सके इसकी क्षमा चाहते हैं। और जिन २ लेखकों की कृतियाँ तथा भूमिका से हमने जो सहायता ली है उसके लिये कृतज्ञता प्रकाशित करते हैं।

पं० राजनारायण शर्मा

विषय-सूची

लेखक	कहानी का नाम	पृष्ठ
१. श्री प्रेमचंद	मुक्ति-मार्ग	१
२. श्री सुदर्शन	अलबम	१७
३. श्री अन्नपूर्णानन्द वर्मा	अकबरी लोटा	२६
४. श्री भगवती प्रसाद वाजपेयी	उपहार	३१
५. श्री अज्ञेय	कड़ियाँ	४८
६. श्री कमलाकान्त वर्मा	पगडंडी	६७
७. श्री भगवतीचरण वर्मा	विक्टोरिया क्रॉस	८६
८. मिर्जा अजीमबेग चगताई	यह किसकी तसवीर है	९५
९. श्री बिन्दु-ब्रह्मचारी	चंबेली की एक कली	११४
१०. श्रीमती महादेवी वर्मा	घीसा	१२३
११. श्री उपेन्द्रनाथ 'अशक'	पिंजरा	१४३
१२. श्री जैनेन्द्र कुमार जैन	जाह्नवी	१५६

मुक्ति-मार्ग

[१]

सिपाही को अपनी लाल पगड़ी पर, सुन्दरी को अपने गहनों पर और वैद्य को अपने सामने बैठे हुए रोगियों पर जो घमण्ड होता है, वही किसान को अपने खेतों को लहराते हुए देखकर होता है। भौंगुर अपने उस के खेतों को देखता, तो उस पर नशा सा छा जाता। तीन बीघे उस थी। इसके ६००) तो अनायास ही मिल जायेंगे और, जो कहीं भगवन ने डौड़ी तेज कर दी, तो फिर क्या पूछना ? दोनों बैल बुढ़े होगए। अब की नई गोई बटेसर के मेले से ले आवेगा। कहीं दो बीघे खेत और मिल गए, तो खिखा लेगा। रुपयों की क्या चिन्ता है। बनिए अभी से उसकी खुशामद करने लगे थे। ऐसा कोई न था, जिससे उसने गांध में लड़ाई न की हो। वह अपने आगे किसी को कुछ समझता ही न था।

एक दिन सन्ध्या के समय वह अपने घेरे को गोद में लिए मटर की फलियाँ तोड़ रहा था। इतने में उसे मेढ़ों का एक झुण्ड अपनी तरफ आता दिखाई दिया। वह अपने मन में कहने लगा—इधर से मेढ़ों के निकलने का रास्ता न था। क्या खेत की मेढ़ पर से मेढ़ों का झुण्ड नहीं जा सकता था ? मेढ़ों को इधर से खाने की क्या जरूरत ? वे खेत को खुचलेंगी, चरेंगी। इसका डोंड कौन देगा। मालूम होता है, बुद्ध गबरिया है।

बच्चा को घमण्ड हो गया है। तभी तो खेतों के बीच से भेड़ें लिए चला आता है। जरा इसकी ठिठाई तो देखो। देख रहा है कि मैं खड़ा हूँ फिर भी भेड़ों को लौटाता नहीं। कौन मेरे साथ कभी रियायत की है कि मैं इसकी मुरौवत करूँ। अभी एक भेड़ मोल मांगूँ, तो पांच ही रुपये सुनावेगा। सारी दुनियाँ में चार-चार रुपये के कम्बल बिकते हैं। पर यह पांच रुपये से नीचे बाज़ नहीं करता।

इतने में भेड़ें खेत के पास आ गईं। भौंशुर ने ललकार कर कहा—“अरे ये भेड़ें कहाँ लिये आते हो? कुछ समझता है कि नहीं?”

बुद्धू नम्र भाव से बोला—“महतो, डाढ़ पर से निकल जायँगी। धूमकर जाऊँगा, तो कोस भर का चक्र पड़ेगा।”

भौंशुर—“तो तुम्हारा चक्र बचाने के लिए मैं अपना खेत क्यों कुचलवाऊँगा? डाढ़ ही पर से ले जाना है, तो और खेतों के डाढ़ से क्यों नहीं ले गए। क्या मुझे कोई चूहड़-चमार समझ लिया है? या धन का घमण्ड हो गया है? लौटाओ इनको।”

बुद्धू—“महतो, आज निकल जाने दो। फिर कभी इधर से आऊँ, तो जो चाहे सजा देना।”

भौंशुर—“कह दिया कि लौटाओ इन्हें। अगर एक भेड़ भी भेड़ पर आई, तो समझ लो, तुम्हारी खैर नहीं है।”

बुद्धू—“महतो, अगर तुम्हारी एक बेल भी किसी भेड़ के पैरों तले आ जाय, तो मुझे बिठाकर सौ गालियाँ देना।”

बुद्धू बातें तो बड़ी नम्रता से कर रहा था, किन्तु लौटने में हेठी समझता था। उसने मन में सोचा—इसी तरह जरा-जरा-सी

धमकियों पर भेड़ों को लौटाने लगा, तो फिर मैं भेड़ों चरा चुका। आज लौट जाऊँ, तो कल को कहीं निकालने का रास्ता ही न मिलेगा। सभी रौब जमाने लगेंगे।

बुद्धू भी पोढ़ा आदमी था। १२ कोड़ी भेड़ें थीं, उन्हें खेतों में बिठाने के लिये फी रात ॥) कोड़ी मजदूरी मिलती थी। इसके उपरान्त दूध बेचता था, उन के कम्बल बनाता था। सोचने लगा—इतने गरम हो रहे हैं, मेरा कर ही क्या लेंगे? कुछ इनका दबैल तो हूँ नहीं। भेड़ों ने जो हरी-हरी पशियाँ देखीं, तो अधीर हो गईं। खेत में घुस पड़ीं। बुद्धू उन्हें डण्डों से मार मार कर खेत के किनारे से हटाता था, और वे इधर-उधर से निकलकर खेत में जा पड़तीं थीं। भींगुर ने आगे होकर कहा—“तुम मुझसे हेकड़ी जताने चलै हो, तो तुम्हारी सारी हेकड़ी निकाल दूंगा।

बुद्धू—“तुम्हें देखकर चौंकती हैं। तुम हट जाओ, तो मैं सबको निकाल ले जाऊँ।”

भींगुर ने लड़के को तो गोद से उतार दिया, और अपना डंडा संभालकर भेड़ों पर पिल पड़ा। धोबी भी इतनी निर्दयता से अपने गधे को न पीटता होगा। किसी भेड़ की टाँग टूटी, किसी की कमर टूटी। सब ने बें—बें का शोर मचाना शुरू किया। बुद्धू चुपचाप खड़ा अपनी सेना का विध्वंस अपनी आँखों से देखता रहा। वह न भेड़ों को हाँकता था, न भींगुर से कुछ कहता था। बस, खड़ा तमाशा देखता रहा। दो मिनट में भींगुर ने इस सेना को अपने अमानुषिक पराक्रम से मार भगाया। मेष-दल का संहार करके विजय गर्व से बोला—“श्रब सीधे चलै जाओ। फिर इधर से आने का नाम न लेना।”

बुद्धू ने आहत भेड़ों की ओर देखते हुए कहा—“मींगुर तुमने यह अच्छा काम नहीं किया। पछुताओ।”

[२]

केले को काटना भी इतना आसान नहीं है, जितना किसान से बदला लेना। उसकी सारी कमाई खेतों में रहती है, या खलिहाना में। कितनी ही दैविक और भौतिक आपदाओं के बाद कहीं अनाज घर में आता है। और, जो कहीं इन आपदाओं के साथ विद्रोह ने भी संधि करली, तो बेचारा किसान कहीं का नहीं रहता। मींगुर ने घर आकर दूसरों से इस संग्राम का वृत्तान्त कहा, तो लोग समझने लगे—“मींगुर, तुमने बड़ा अनर्थ किया! जानकर अनजान बनते हो! बुद्धू को जानते नहीं, कितना मगड़ालू आदमी है। अब भी कुछ नहीं बिगड़ा। जाकर उसे मनालो। नहीं तो तुम्हारे साथ सारे गाँव पर आक्रांत आ जायगी”। मींगुर की समझ में बात आई। पछुताने लगा कि मैंने कहाँ से कहाँ उसे रोका। अगर भेड़ें थोड़ा बहुत चर हो जातीं, तो कौन मैं उजड़ा जाता था। वारत्तव मैं हम किसानों का कल्याण दबे रहने में है। ईश्वर को भी हमारा सिर उठाकर चलना अच्छा नहीं लगता। जी तो बुद्धू के घर जाने को न चाहता था, किन्तु दूसरों के आग्रह से मजबूर होकर चला। अग्रहन का महीना था, कुहरा पड़ रहा था। चारों ओर अन्धकार छाया हुआ था। गाँव से बाहर निकला ही था कि सहसा अपने ऊख के खेत की ओर अग्नि की ज्वाला देखकर चौंक पड़ा। छाती धड़कने लगी। खेत में आग लगी हुई थी। बेतहाशा दौड़ा। मनाता जाता था कि मेरे खेत में न हो। पर ज्यों ज्यों समीप पहुँचता था, यह आशामय भ्रम शांत होता जाता था। वह अनर्थ हो ही गया, जिसके निवारण के लिये

के लिये घर से चला था। हत्यारे ने आग ही लगा दो, और मेरे पीछे सारे गाँव को चौपट किया। उसे ऐसा जान पड़ता था कि वह खेत आज बहुत समीप आ गया है, मानो बीच के परती खेतों का अस्तित्व ही नहीं रहा। अन्त में जब वह खेत पर पहुँचा, तो आग प्रचंड रूप धारण कर चुकी थी। भोंगुर ने हायहाय, मचाना शुरू किया। गाँव के लोग दौड़ पड़े, और खेतों से अरहर के पौधे उखाड़-उखाड़ आग को पीटने लगे। अग्नि-मानव-संग्राम का भीषण दृश्य उपस्थित हो गया। एक पहर तक हाहाकार मचा रहा। कभी एक पक्ष प्रबल होता था, कभी दूसरा। अग्नि-पक्ष के योद्धा मर-मरकर जी उठते थे और द्विगुण शक्ति से रणोन्मत्त होकर, शस्त्र-प्रहार करने लगते थे। मानव-पक्ष में जिस योद्धा की कीर्ति सबसे उज्ज्वल थी, वह बुद्धू था। बुद्धू कमर तक धोती चढ़ाए, प्राण हथेली पर लिए, अग्नि राशि में कूद पड़ता था, और शत्रुओं को परास्त करके, बाल-बाल बचकर निकल आता था। अन्त में मानव-दल की विजय हुई; किन्तु ऐसी विजय, जिस पर हार भी हँसती। गाँव-भर की उख जलकर भस्म हो गई और उख के साथ सारी अभिलाषाएँ भी भस्म हो गईं।

[३]

आग किसने लगाई, यह खुला हुआ भेद था; पर किसी को कहने का साहस न था। कोई सबूत नहीं। प्रमाण-हीन तर्क का मूल्य ही क्या। भोंगुर को घर से निकलना मुश्किल हो गया जिधर जाता, ताने सुनने पड़ते। लोग प्रत्यक्ष कहते थे "यह आग तुमने लगवाई। तुम्हीं ने हमारा सर्वनाश किया तुम्हीं मारे घमंड के धरती पर पैर न रखते थे। आप के आप गए, अपने साथ गाँव-भर को डुबो दिया। बुद्धू को न छेड़ते, तो आज क्यों

यह दिन देखना पड़ता?" भींगुर को अपनी बरबादी का इतना दुःख न था, जितना इन जलीं कटी बातों का । दिन भर घर में बैठा रहता । पूस का महीना आया । जहाँ सारी रात कोल्हू चला करते थे, गुड़ की सुगन्ध उड़ती रहती थी, भट्टियाँ जलती रहती थीं, और लोग भट्टियों के सामने बैठे हुका पिया करते थे, वहाँ सन्नाटा छाया हुआ था । ठंड के मारे सौंफ ही से किवाड़े बन्द करके पड़ रहते, और भींगुर को कोसते । माघ और भी कष्टदायक था । ऊख केवल धन दाता ही नहीं किसानों का जीवन दाता भी । उसी के सहारे किसानों का जाड़ा घटता है । गरम रस पीते हैं, ऊख की पत्तियों से तापते हैं, उसके अगोड़े पशुओं को खिलाते हैं । गाँव के सारे कुसे जो रात को भट्टियों की राख में सोया करते थे, ठंड से मर गए । कितने ही जानवर चारे के अभाव से चल बसे । शीत का प्रकोप हुआ और सारा गाँव खौंसी बुखार में ग्रस्त हो गया और यह सारी विपत्ति भींगुर की करनी थी—अभाग्य हत्यारे भींगुर की !

भींगुर ने सोचते-सोचते निश्चय किया कि बुद्धू की दशा भी अपनी ही-सी बनावट का । उसके कारण मेरा सर्वनाश हो गया और यह चैन की बन्शी बजा रहा है ! मैं भी उसका सर्वनाश करूँगा ?

जिस दिन इस घातक कलह का बीजारोपण हुआ, उसी दिन से बुद्धू ने इधर आना छोड़ दिया था । भींगुर ने उस से रक्त-जल बढ़ाना शुरू किया । वह बुद्धू को दिखाना चाहता था कि तुम्हारे ऊपर मुझे बिल्कुल सन्देह नहीं है । एक दिन कम्बल लेने के बहाने गया फिर दूध लेने के बहाने । बुद्धू उसका खूब आदर सत्कार करता । चिलम तो आदमी दुश्मन को भी पिला देता है,

वह उसे बिना दूध और शर्बत पिलाए न आने देता। भौंगुर आज कल एक सन लपेटने वाली कल में मज़दूरी करने जाया करता था। बहुधा कई-कई दिनों की मज़दूरी इकट्ठी मिलती थी बुद्धू ही की तत्परता से भौंगुर का रोज़ाना खर्च चलता था। अतएव भौंगुर ने खूब रबत ज़ब्त बढ़ा लिया। एक दिन बुद्धू ने पूछा—“क्यों भौंगुर, अगर अपनी ऊख जलानेवाले को पा जाओ, तो क्या करो? सच कहना।”

भौंगुर ने गम्भीर भाव से कहा—“मैं उसे कहूँ भैया, तुमने जो कुछ किया, बहुत अच्छा किया मेरा घमण्ड तोड़ दिया; मुझे आदमी बना दिया।”

बुद्धू—“बस मैं जो तुम्हारी जगह होता बिना उसका घर जलाए न मानता।”

भौंगुर—“चार दिन की जिन्दगानी में धैर-विरोध बढ़ाने से क्या फ़ायदा? मैं तो बरबाद हुआ ही, अब उसे बरबाद करके क्या पाऊँगा?”

बुद्धू—“बस, यही आदमी का धर्म है। पर भाई, क्रोध के बस में हो कर बुद्धि उलटी हो जाती है।”

[४]

फागुन का महीना था। किसान ऊख बोने के लिये खेतों को तैयार कर रहे थे। बुद्धू का बाज़ार गरम था। भेड़ों की लूट मची हुई थी। दो-चार आदमी नित्य द्वार पर खड़े खुशामदें किया करते। बुद्धू किसी से सीधे मुँह बात न करता। भेड़ रखने की फ़ीस वृत्ती कर दी थी। अगर कोई एतराज़ करता, तो बेलगा कहता—“भैया भेड़े तुम्हारे गले तो नहीं लगाता हूँ।”

जी न चाहे, मत रक्खो । लेकिन मैंने जो कह दिया है, उससे एक कौड़ी भी कम नहीं होसकती । “शरज्ज थी, लोग इस रुखाई पर भी उसे घेरे ही रहते थे, मानो पण्डे किसी यात्री के पीछे पड़े हों ।

लक्ष्मी का आकार तो बहुत बड़ा नहीं और वह भी समयानुसार छोटा - बड़ा होता रहता है । यहाँ तक कि कभी वह अपना विराट आकार समेटकर उसे कागज के चन्द अक्षरों में छिपा लेती है । कभी कभी तो मनुष्य की जिह्वा पर जा बैठती है। आकार का लोप होजाता है । किन्तु उनके रहने का बहुत स्थान की जरूरत होती है । वह आई और घर बढ़ने लगा छोटे घर में उनसे नहीं रहा जाता । बुद्धू का घर भी बढ़ने लगा । द्वार पर बरामदा डाला गया दो की जगह छः कोठरियाँ बनवाई गईं । यों कहिए कि मकान नए सिरे से बनने लगा । किसी किसान से लकड़ी मांगी, किसी से खपरों का आवा लगाने के लिए उपले, किसी से बांस और किसी से सरकंडे । दीवार की उठवाई देनी पड़ी वह भी नक़्द नहीं भेड़ों के बच्चों के रूप में । लक्ष्मी का यह प्रताप है । सारा काम बेगार में होगया । मुफ्त में अच्छा खासा घर तैयार हो गया । गृह-प्रवेश की तैयारियां होने लगी ।

इधर भीगुर दिन-भर मजदूरी करता तो कहीं आधा पेट अन्न मिलता । बुद्धू घर कंचन बरस रहा था । भीगुर जलता था, तो क्या बुरा करता था ? यह अन्याय किससे सहा जायगा ।

एक दिन वह टहलता हुआ चमारों के टोले की तरफ चला गया । हरिहर को पुकारा । हरिहर ने आकर राम-राम की और चिलम भरी । दोनों पीने लगे । यह चमारों का मुखिया बड़ा दुष्ट आदमी था । सब किसान इससे थर-थर कांपते थे ।

भींगुर ने चिलम पीते-पीते कहा—“आजकल फाग-बाग नहीं होता क्या ? सुनाई नहीं देता !”

हरिहर—“फाग क्या हो, पेट के धन्धे से छुटी ही नहीं मिलती । कहो, तुम्हारी आजकल कैसी निभती है ?”

भींगुर—“क्या निभती है । नकटा जिया बुरे हवाले ! दिन भर कल में मजदूरी करते हैं, तो चूल्हा जलता है । चाँदी तो आजकल बुद्धू की है । रखने को ठौर नहीं मिलती । नया घर बना भेड़े और ली हैं । अब गृही परबेस की धूम है । सातों गाँवों में सुपारी जायगी ।”

हरिहर—“लक्ष्मी मैया आती है, तो आदमी की आखों में सोल आजाता है । पर उसको देखो धरती पर पैर ही नहीं रखता । बोलता है तो ऐंठकर ही बोलता है !”

भींगुर—“क्यों न ऐंठे, इस गाँव में कौन है उसकी टक्कर का ! पर यार यह अनीति नहीं देखी जाती । भगवान दे तो सिर झुकाकर चलना चाहिए । यह नहीं कि अपने बराबर किसी को समझे ही नहीं । उसकी डाँग सुनता हूँ । तो बदन में आग लग जाती है ! कल का बाड़ी आज का सेठ । चला है हमी से अकड़ने अभी कल लंगोटी लगाए खेतों में कौए हंकाया करता था । आज उसका आसमान में दिया जलता है ।”

हरिहर—“कहो तो कुछ उताजोग करूँ ?”

भींगुर—“क्या करोगे ? ज़सी डर से तो वह गाय, भैंस नहीं पालता ।”

हरिहर—“भेड़े तो हैं ? ,,

भींगुर—“क्या, बगला मारे पखना हाथ ।”

हरिहर—“फिर तुम्हीं सोचो ।”

भोंगुर—“ऐसी जुगुत निकालो कि फिर पनपने न पावे ।”

इसके बाद फुस-फुस करके बातें होने लगीं । यह एक रहस्य है कि भलाइयों में जितना द्वेष होता है, बुराइयों में उतना ही प्रेम । विद्वान विद्वान को देखकर, साधु साधु को देखकर और कवि कवि को देखकर जलता है । एक दूसरे की सूरत नहीं देखना चाहता । पर जुआरी जुआरी को देखकर शराबी शराबी को देखकर चोर चोर को देखकर सहानुभूति दिखाता है सहायता करता है । एक पण्डित जी अगर अंधेरे में ठोकर खाकर गिर पड़े तो दूसरे पण्डित जी उन्हें उठाने के बदले दो ठोकरें और लगावेंगे, कि फिर बह उठ ही न सके । पर एक चोर पर आफत आई देख दूसरा चोर उसकी आड़ कर लेता है । बुराई से सब घृणा करते हैं, इसलिए बुरों में परस्पर प्रेम होता है । भलाई की सारा संसार प्रशंसा करता है, इसलिए भलों में विरोध होता है । चोर को मारकर चोर क्या पावेगा ? घृणा । विद्वान का अपमान करके विद्वान क्या पावेगा ? यश ।

भोंगुर और हरिहर ने सलाह करली । घड़शंकर रचने की विधि सोची गई । उसका स्वरूप, समय और क्रम ठीक किया गया । भोंगुर चला, तो अकड़ा जाता था मार लिया दुश्मन को, अब कहाँ जाता है ।

[५]

दूसरे दिन भोंगुर काम पर जाने लगा, तो पहले बुद्धू के घर पहुँचा । बुद्धू ने पूछा —“क्यों आज नहीं गए क्या ?”

भोंगुर—“जा तो रहा हूँ । तुमसे यही कहने आया था कि मेरी बछिया को अपनी भेड़ों के साथ क्यों नहीं चरा दिया करते । बेचारी खूँटे से बंधी-बंधी मरी जाती है । न घास न चारा, क्या खिलावे ?”;

बुद्धू—“भैया, मैं गाय-भैंस नहीं रखता। चमारों को जानते हो एक ही हत्यारे होते हैं। इसी हरिहर ने मेरी दो गऊएँ मार डालीं न जाने क्या खिला देता है। तब से कान पकड़े कि अब गाय-भैंस न पालूंगा। लेकिन तुम्हारी एक ही बछिया है। उसका कोई क्या करेगा। जब, चाहो पहुँचा दो।”

यह कहकर बुद्धू अपने गृहोत्सव का सामान उसे दिखाने लगा। घी, शक्कर, मैदा, तरकारी सब रँगा रखता था। केवल सत्यनारायण की कथा की देर थी। भीँगुर की आँखें खुल गईं। ऐसी तैयारी न उसने स्वयं कभी की थी, और न किसी को करते देखी थी। मज़दूरी करके घर लौटा, तो सबसे पहला काम जो उसने किया, वह अपनी बछिया का बुद्धू के घर पहुँचाना था। उसी रात को बुद्धू के यहाँ सत्यनारायण की कथा हुई। ब्रह्म-भोज भी किया गया। सारी रात विप्रों का आगत-स्वागत करते रुजरी। भेड़ों के भुण्ड में जाने का अवकाश ही न मिला। प्रातः काल भोजन करके उठा ही था (क्योंकि रात का भोजन सवेरे मिला) कि एक आदमी ने आकर खबर दी—“बुद्धू, तुम यहाँ बैठे हो, उधर भेड़ों में बछिया मरी पड़ी है। भले आदमी उसकी पगहिया भी नहीं खेती थी!”

बुद्धू ने सुना और मानो ठोकर लग गई। भीँगुर भी भोजन करके वहीं बैठा था। बोला—“हाय मेरी बछिया चलो, ज़रा देखूँ तो। मैंने तो पगहिया नहीं लगाई थी। उसे भेड़ों में पहुँचा कर अपने घर चला गया। तुमने यह पगहिया कब लगा दी?”

बुद्धू—“भगवान् जाने, जो मैंने उसकी पगहिया देखी भी हो। मैं तो तब से भेड़ों में गया ही नहीं!”

भींगुर—जाते न तो पगहिया कौन लगा देता ? गए होंगे, याद न आती होगी ।”

एक ब्राह्मण—“मरी तो भेड़ों में ही न ? तो दुनिया यही कहेगी कि बुद्ध की असावधानी से उसकी मृत्यु हुई, पगहिया किसी की हो ।”

हरिहर—“मैंने फल साँभ को इन्हें भेड़ों में बछिया को बाँधते देखा था ।”

बुद्ध—“मुझे ?”

हरिहर—“तुम नहीं लाठी कँधे पर रखे बछिया को बांध रहे थे ?”

बुद्ध—“बड़ा सच्चा है तू । तूने मुझे बछिया को बाँधते देखा था ?”

हरिहर—“तो मुझ पर काहे को बिगड़ते हो भाई ? तुमने नहीं बांधी, नहीं सही ।”

ब्राह्मण—“इसका निश्चय करना होगा । गो हत्या का प्रायश्चित्त करना पड़ेगा । कुछ हँसी-ठट्ठा है ?”

भींगुर—“महाराज, कुछ जान बूझ कर तो बाँधी नहीं ।”

ब्राह्मण—“इससे क्या होता है ? हत्या इसी तरह लगती है । कोई गऊ को मारने नहीं जाता ।”

भींगुर—“हां, गउओं को खोलना बांधना है तो जोखिम का काम ।”

ब्राह्मण—“शास्त्रों में इसे महापाप कहा है । गऊ की हत्या ब्राह्मण की हत्या से कम नहीं ।”

भींगुर—“हाँ, फिर गऊ तो ठहरी ही, इसी से न इसका

मान होता है । जो माता सो गऊ । महाराज, चूक हो गई । कुछ ऐसा कीजिए कि थोड़े में बेचारा निपट जाय ।”

बुद्धू खड़ा सुन रहा था कि अनायास मेरे सिर हत्या मढ़ी जा रही है । झींगुर की कूटनीति भी समझ रहा था । मैं लाख कहूँ मैंने बछिया नहीं बाँधी, मानेगा कौन ? लोग यही कहेंगे कि प्रायश्चित्त से बचने के लिए ऐसा कह रहा है ।

ब्राह्मण देवता का भी उसका प्रायश्चित्त कराने में कल्याण होता था । भला ऐसे अवसर पर कब चूकने वाले थे । फल यह हुआ कि बुद्धू को हत्या लग गई । ब्राह्मण भी उस से जले हुए थे । कसर निकालने की घात मिली । तीन मास का भिक्षा-दण्ड दिया, फिर सात तीर्थ-स्थानों की यात्रा, उस पर ५०० विप्रों का भोजन और ५ गऊओं का दान । बुद्धू ने सुना तो, बधिया बैठ गई । रोने लगा, तो दण्ड घटाकर दो मास कर दिया गया इसके सिवा कोई रियायत न हो सकी । न कहीं अपील न कहीं फरियाद । बेचारे को यह दण्ड स्वीकार करना पड़ा

[६]

बुद्धू ने भेड़ें ईश्वर को सौंपी । लड़के छोटे थे । स्त्री अकेली क्या-क्या करेगी । जाकर द्वारों पर खड़ा होता, और मुंह छिपाए हुए कहता —“गाय की बाछी दियो बनवास ।” भिक्षा तो मिल जाती । किन्तु भिक्षा के साथ दो-चार कठोर, अपमान-जनक शब्द भी सुनने पड़ते । दिन को जो कुछ पाता वही शाम को किसी पेड़ के नीचे बनाकर खा लेता, और वहीं पड़ रहता कष्ट की तो उसे परवाह न थी, भेड़ों के साथ दिनभर चलता ही था, पेड़ के नीचे सोता ही था, भोजन भी इससे कुछ ही अच्छा मिलता था पर लज्जा थी भिक्षा माँगने की । विशेष करके जब कोई कर्कशा यह

व्यंग्य कर देती थी कि रोटी कमाने का अच्छा ढंग निकाला है, तो उसे हार्दिक वेदना होती थी, पर करे क्या ?

दो महीने बाद घर लौटा । बाल बड़े हुए थे । दुर्बल इतना मानो साठ वर्ष का बूढ़ा हो । तीर्थयात्रा के लिए रुपयों का प्रबन्ध करना था । गड़रियों को कौन महांजन कर्ज दे ? मेड़ों का भरोसा क्या ? कभी-कभी रोग फैलता है , तो रातभर में दल का दल साफ होजाता है । उस पर जेठ का महीना, जब मेड़ों से कोई आमदनी होने की आशा नहीं । एक तेली राजी भी हुआ , तो (=) रुपया ब्याज पर, आठ महीने में ब्याज मूल के बराबर हो जायगा ।

यहाँ कर्ज लेने की हिम्मत न पड़ी । इधर दो महीनों में कितनी ही मेड़े चोरी चली गई थीं । लड़के चराने लेजाते थे । दूसरे गाँव वाले चुपके से एक दो मेड़े किसी खेत या घर में छिपा देते, और पीछे मातकर खा जाते । लड़के बेचारे एक तो पकड़ न सकते और जो देख भी लेते तो लड़े क्यों कर । सारा गाँव एक होजाता था । एक महीने में तो मेड़े आधी भी न रहेंगी । बड़ी दिक्कत समस्या थी । विदश होकर बुद्धू ने एक वूचड़ को बुलाया ,और सब मेड़े उसके हाथ बेच डालीं । १००) हाथ लगे , उनमें से २००) लेकर वह तीर्थ-यात्रा करने गया । शेष रुपया ब्रह्मभोज आदि के लिए छोड़ गया ।

बुद्धू के जाने पर उसके घर में दो बार सेंध लगी । पर यह कुशल हुई कि जगहर हो जाने के कारण रुपये बच गए ।

[७]

सावन का महीना था । चारों ओर हरियाली छाई हुई थी । भौंगुर के बैल न थे । खेत बंटाई पर दे दिए थे । बुद्धू प्रायश्चित्त से निवृत्त होगया था, और उसके साथ माया के फन्दे से भी ।

न भीगुर के पास कुछ था। न बुद्धू के पास। कौन किससे जलता और किस लिए जलता ?

सन की कल बन्द होजाने के कारण भीगुर अब बेलदारी का काम करता था। शहर में एक विशाल धर्मशाला बन रही थी। हज़ारों मज़दूर काम करते थे। भीगुर भी उन्हीं में था। मातये दिन मज़दूरी के पैसे लेकर घर आता था, और रातभर रहकर सुबह फिर चला जाता था।

बुद्धू भी मज़दूरी की टोह में यहीं पहुँचा। जमादार ने देखा दुर्बल आदमी है, कठिन काम तो इससे हो न सकेगा, कारीगरों को गारा देने के लिए रख लिया। बुद्धू सिर पर तसला रखे गारा लेने गया, तो भीगुर को देखा। राम-राम हुई, भीगुर ने गारा भर दिया बुद्धू उठा लाया। दिन भर दोनों चुप-चाप अपना-अपना काम करते रहे।

सन्ध्या समय भीगुर ने पूछा—“कुछ बनाओगे न ?”

बुद्धू—“नहीं तो खाऊँगा क्या ?”

भीगुर—“मैं तो एक जून चबैना कर लेता हूँ। इस जून सत्तू पर काट देता हूँ। कौन झूट करे।”

बुद्धू—“इधर-उधर लकड़ियाँ पड़ी हुई हैं, बटोर लाओ। आटा मैं घर से लेता आया हूँ। घर ही पर पिसवा लिया था। यहां तो बड़ा मंहगा मिलता है। इसी पत्थर की चट्टान पर आटा गूँधे लेता हूँ। तुम तो मेरा बनाया खाओगे नहीं, इसलिये तुम्ही रोटियाँ सेंको मैं बना दूँगा।”

भीगुर—“तवा भी तो नहीं है ?”

बुद्धू—“तवे बहुत हैं। यही गारे का तसला माँजे लेता हूँ।”

आग जली, आटा गूँथा गया। भीगुर ने कच्ची-पकी रोटियाँ बनाईं। बुद्धू पानी लाया। दोनों ने लाल मिर्च और नमक से

रोटियां खाईं फिर चिलम भरी गईं । दोनों आदमी पत्थर की सिलों पर लेटे और चिलम पीने लगे ।

बुद्धू ने कहा—“तुम्हारी ऊख में आग मैंने लगाई थी ।”

भीगुर ने विनोद के भाव से कहा—“जानता हूँ ।” थोड़ी देर के बाद भीगुर बोला—“बछिया मैंने ही बांधी थी, और हरिहर ने उसे कुछ खिला दिया था ।”

बुद्धू ने भी वैसे ही भाव से कहा—“जानता हूँ ।” फिर दोनों सो गये ।

—)०(—

अलबम

पंडित शादीराम ने ठंडी सांस ली, और सोचने लगे—क्या यह ऋण कभी सिर से न उतरेगा ?

वह निर्धन थे, परन्तु दिल के बुरे न थे। वह चाहते थे कि चाहे जिस प्रकार हो, अपने यजमान—लाला सदानन्द —का रुपया अदा कर दें। उनके लिए एक-एक पैसा मोहर के बराबर था। अपना पेट काटकर बचाते थे, परन्तु जब चार पैसे इकट्ठे हो जाते, तो कोई ऐसा खर्च निकल आता कि सारा रुपया उड़ जाता। शादीराम के हृदय पर बर्छियाँ चल जाती थीं। उनका वही हाल होता था, जो उस डूबते हुए मनुष्य का होता है, जो हाथ-पाँव मारकर किनारे पहुंचे, और किनारे फट पड़े। उस समय उसकी दशा कैसी करुणा-जनक, कैसी हृदय-वेधक होती है। वह प्रार्थन को गालियाँ देने लगता है। यही दशा शादीराम की थी।

इसी प्रकार कई वर्ष बीत गए, शादीराम ने पैसा-पैसा बचाकर अस्सी रुपये जोड़ लिए। उन्हें लाला सदानन्द के पाँच सौ रुपये देने थे। इस अस्सी रुपये की रकम से ऋण उतरने का समय निकट आता प्रतीत हुआ। आशा धोखा दे रही थी एकाएक

उनका छोटा लड़का बीमार हुआ, और लगातार चार महीने बीमार रहा । पैसा-पैसा करके बचाए हुए रुपये दवादारु में उड़ गए । पंडित शादीराम ने सिर पीट लिया अब चारों ओर फिर अन्धकार था । उसमें प्रकाश की हल्की-सी किरण भी दिखाई न देती थी । उन्होंने ने ठंडी सांस ली, और सोचने लगे—क्या यह ऋण कभी सिर से न उतरेगा ?

लाला सदानन्द अपने पुरोहित की विवशता को जानते थे, और यह चाहते थे कि वह रुपये देने का न प्रयत्न करें । उन्हें इस रकम की रत्ती-भर भी पर्वा न थी । उन्होंने इसके लिये कभी तक्राज़ा तक नहीं किया, न कभी शादीराम से इस विषय की बात छेड़ी । इस बात से वह इतना डरते थे, मानो रुपये स्वयं उन्हीं को देने हों । परन्तु शादीराम के हृदय में शांति न थी । प्रायः सोचा करते थे कि यह कैसे भलेमानस हैं, जो अपनी रकम के बारे में मुझसे बात तक नहीं करते ? खैर, यह कुछ नहीं करते, सो ठीक है; परन्तु इसका तात्पर्य यह थोड़े ही है कि मैं भी निश्चित हो जाऊँ ।

उन्हें लाला सदानन्द के सामने सिर उठाने का साहस न था । उसे ऋण के बोझ ने नीचे झुका दिया था । यदि लाला सदानन्द ऐसी सज्जनता न दिखलाते, और शादीराम को बार-बार तक्राज़ा करके तंग करते, तो उन्हें ऐसा मानसिक कष्ट न होता । हम अत्याचार का सामना सिर उठाकर कर सकते हैं; परन्तु भलमनसी के सामने आँखें नहीं उठतीं ।

एक दिन लाला सदानन्द किसी काम से पंडित शादीराम के घर गए, और उनकी अलमारी में कई सौ बँगला, हिन्दी, अँगरेज़ी आदि भाषाओं की मासिक पत्रिकाएँ देखकर बोले—
यह क्या हैं ?

पंडित शादीराम ने पैर के अँगूठे से ज़मीन कुरेदते हुए उत्तर दिया—पुरानी पत्रिकाएँ हैं। बड़े भाई को पढ़ने का बड़ा चाव था, वही प्रायः इन्हें मँगवाते रहते थे। जब जीते थे, तो किसी को हाथ न लगाने देते थे। अब इन्हें कीड़े खा रहे हैं।

रही में क्यों नहीं बेच देते ?

‘इनमें चित्र हैं। जब कभी बच्चे रोने लगते हैं, तो एक-आध निकाल कर दे देता हूँ। इससे उनके आँसू थम जाते हैं।’

लाला सदानन्द ने आगे बढ़कर कहा—‘दो-चार परचे दिखाओ तो।’

पंडित शादीराम ने कुछ परचे दिखाए। हर एक परचे में कई-कई सुन्दर और रंगीन चित्र थे। लाला सदानन्द कुछ देर तक उलट-पुलटकर देखते रहे। सहसा उनके हृदय में एक विचित्र विचार उठा। चौंककर बोले—‘पंडितजी’ !

‘कहिए ?’

‘ये चित्र कला-सौन्दर्य के अति उत्तम नमूने हैं। अगर किसी शौकीन को पसन्द आ जायँ, तो हजार दो हजार रुपये कमालो।’

पंडित शादीराम ने एक ठण्डी सांस लेकर कहा—‘ऐसे भाग्य होते, तो यों धक्के न खाता फिरता ?’

लाला सदानन्द बोले—‘एक काम करो।’

‘क्या ?’

‘आज बैठकर इन परचों में जितनी अच्छी-अच्छी तस्वीरें हैं, सबको छाँट कर अलग कर लो।’

‘बहुत अच्छा।’

‘जब यह कर चुको तो मुझे पता देना।’

‘आप क्या करेंगे ?’

‘मैं इनका अलबम बनाऊँगा, और तुम्हारी ओर से विज्ञापन

दे दूँगा । संभव है, वह विज्ञापन किसी शौकीन के हाथ पड़ जाय, और तुम चार पैसे कमा लो ।”

[२]

पंडित शादीराम को यह आशा न थी कि कोयलों में हीरा मिल जायगा । घोर निराशा ने आशा के द्वार चारों ओर से बन्द कर दिये थे । वह उन हत-भाग्य मनुष्यों में से थे, जो संसार में असफल, केवल असफल रहने के लिए उत्पन्न होते हैं । सोने को हाथ लगाते थे, तो वह मिट्टी हो जाता था उनकी ऐसी धारणा ही नहीं पक्का विश्वास था कि यह प्रयत्न भी कभी सफल न होगा । परन्तु लाला सदानन्द के आग्रह से दिन भर बैठ कर तस्वीरें छोटते रहे । न मन में लगन थी, न हृदय में चाव, परन्तु लाला सदानन्द की बात को टाल न सके शाम हुई । देखा, दो सौ एक-से एक बढ़िया चित्र हैं, उस समय उन्हें देखकर स्वयं उछल पड़े । उनके मुख पर आनन्द की आभा नृत्य करने लगी । जैसे फेल हो जाने का विश्वास करके अपनी प्रारब्ध पर रो चुके विद्यार्थी को पास होजाने का तार मिल गया हो । उस समय वह कैसा प्रसन्न होता है, चारो ओर कैसी विस्मय और प्रफुल्लित दृष्टि से देखता है ! यही अवस्था पंडित शादीराम की थी । वह उन चित्रों की ओर इस प्रकार देखते थे, मानो उनमें से प्रत्येक दस-दस रुपये का नोट हो । बच्चों को उधर देखने न देते थे । वह सफलता के विचार से इतने प्रसन्न हो रहे थे, जैसे सफलता प्राप्त हो चुकी हो । यद्यपि वह अभी कोसों दूर थी । लाला सदानन्द का विचार उनके मस्तिष्क में निश्चय का रूप धारण कर चुका था !

लाला सदानन्द ने चित्रों को अलबम में लगवाया, और

कुछ उच्चकोटि के समाचार-पत्रों में विज्ञापन दे दिया । अब पंडित शादीराम प्रत्येक समय डाकिए की प्रतीक्षा करते रहते थे । प्रतिदिन सोचते थे कि आज कोई चिट्ठी आवेगी । दिन बीत जाता और कोई उत्तर न आता था । रात को आशा सड़क की धूल की तरह बैठ जाती थी । परन्तु दूसरे दिन लाला सदानन्द की बातों से टूटी हुई आशा फिर बंध जाती थी, जिस प्रकार गाड़ियों चलने से सड़क पर बैठी हुई धूल हवा में उड़ने लगती है । आशा फिर अपना चमकता हुआ मुख दिखाकर दरवाजे पर खड़ा कर देती थी । डाक का समय होता तो बाज़ार में ले जाती और वहाँ से डाकखाने पहुँचाती थी इसी प्रकार एक महीना बीत गया, परन्तु कोई पत्र न आया पंडित शादीराम सर्वथा निराश हो गए । परन्तु फिर भी कभी-कभी सफलता का विचार आ जाता था, जिस प्रकार अंधेरे में जुगनू चमक जाता है । यह जुगनू की चमक निराश हृदयों के लिए कैसी जीवन-दायिनी' वैसी हृदयहारिणी होती है ! इसके सहारे भूले हुए पथिक मंजिल पर पहुँचने का प्रयत्न करते और कुछ देर के लिए अपना दुःख भुला देते हैं । इस झूठी आशा के अन्दर सच्चा प्रकाश नहीं होता; । परन्तु यह दूर के संगीत के समान मनोहर अवश्य होती है । इसमें वर्षा की नमी हो या न हो, परन्तु इससे काली घटा का जादू कौन छीन सकता है ?

अन्त को एक दिन शादीराम के भाग्य जगो । कल-करो के एक मारवाड़ी सेठ ने पत्र में लिखा कि अलबम भेज दो । यदि पसन्द आगया, तो खरीद लिया जायगा । मूल्य की कोई चिन्ता नहीं । चीज अच्छी होनी चाहिए यह पत्र उस करवट के समान था । जिसे सोया हुआ मनुष्य जागने से पहले बदलता और उसके पश्चात् बिस्तरे पर बैठ जाता है । यह किसी पुरुष की

करवट न थी, किसी स्त्री की करवट न थी, यह भाग्य की करवट थी। पंडित शादीराम दौड़े हुए लाला सदानन्द के पास पहुंचे और उन्हें पत्र दिखाकर पूछा—“भेज दूँ”?

लाला सदानन्द ने पत्र अच्छी तरह देखा और उत्तर दिया “रजिस्टर्ड कराकर भेज दो। शौकीन आदमी है। खरीद लेगा!”

“और मूल्य?”

“लिख दो एक हजार रुपये से कम पर सौदा न होगा।”

कुछ दिन बाद उन्हें उत्तर में एक बीमा मिला। पंडित शादीराम के हाथ-पैर काँपने लगे। परन्तु हाथ-पैरों से अधिक उनका हृदय काँप रहा था। उन्होंने जल्दी से लिफाफा खोला और उछल पड़े। उसमें सौ-सौ रुपये के दस नोट थे। पहले उनके भाग्य ने करवट ही बदली थी, अब वह पूर्ण रूप से जग उठा। पंडित शादीराम खड़े थे, बैठ गये। सोचने लगे—अगर दो हजार रुपये लिख देता तो शायद उतने ही मिल जाते। इस विचार ने उसकी सारी प्रसन्नता किरकिरी कर दी।

(३)

सायंकाल के समय वह लाला सदानन्द के पास गये और पांच सौ रुपये के नोट सामने रखकर बोले “परमात्मा का धन्यवाद है कि मैं इस भार से छुटकारा पा गया। अपने रुपये सँभाल लीजिये। आपने जो दया और सज्जनता दिखलाई है, उसे मरण-पर्यन्त न भूलूँगा।”

लाला सदानन्द ने विस्मित-से होकर पूछा—“पंडितजी क्या सेठ ने अलबम खरीद लिया?”

“जी हाँ, रुपये भी आ गये।”

“एक हजार ?”

“जी हाँ । नहीं तो मुझ निर्धन ब्राह्मण के पास क्या था, जो आप का ऋण चुका देता ? परमात्मा ने मेरी सुन ली ।”

“मैं पहले भी कहना चाहता था; परन्तु कहते हुए हिचकिचाता था कि आप के हृदय को कहीं ठेस न पहुँचे । पर अब मुझे यह भय नहीं है; क्योंकि रुपये आप के हाथ में हैं । मेरा विचार है कि आप ये रुपये अपने ही पास रखें । मैं आपका यजमान हूँ । मेरा धर्म है कि आपकी सेवा करूँ ।”

पंडितजी की आँखों में आँसू आ गये । दुष्ट से उन्हें पाँछते हुए बोले—“आप जैसे सज्जन संसार में बहुत थोड़े हैं । परमात्मा आपको चिरंजीवी रखें । परन्तु अब तो मैं ये रुपये न लूँगा । इतने वर्ष आपने माँगे तक नहीं, यह उपकार कोई थोड़ा नहीं है । मुझे इससे उद्धार होने दीजिए । ये पाँच सौ रुपये देकर मैं हृदय की शान्ति खरीद लूँगा ।”

निर्धन ब्राह्मण की उदारता और सच्चरित्रता देखकर सदानन्द का मनोमयूर नाचने लगा । उन्होंने नोट ले लिए । मनुष्य रुपये देकर भी ऐसा प्रसन्न हो सकता है, इसका पहली ही बार उन्हें अनुभव हुआ । पंडितजी के चले जाने पर उन्होंने अपनी आँखें बन्द कर लीं और किसी विचार में मग्न हो गये । इस समय उनके मुख-मण्डल पर एक विशेष आत्मिक तेज था ।

[४]

छः मास बीत गए ।

लाला सदानन्द बीमार थे । ऐसे बीमार बह सारी आयु में न हुए थे । पण्डित शादीराम उनके लिये दिन-रात माला फेरा

करते थे । वह वैद्य न थे, डाक्टर न थे । वह ब्राह्मण थे, उनकी औषध माला फेरना ही थी, और यह काम वह अपनी आत्मा की पूरी शक्ति, अपने मन की पूरी श्रद्धा से करते थे । उन्हें औषध की अपेक्षा आशीर्वाद और प्रार्थना पर अधिक भरोसा था ।

एक दिन लाला सदानन्द चारपाई पर लेटे थे । उनके पास उनकी बूढ़ी मां उनके दुर्बल और पीले मुख को देख-देखकर अपनी आँखों के आंसू अन्दर ही अन्दर पी रही थी । थोड़ी दूर पर, एक कोने में, उनकी नवोद्गा स्त्री घूँघट निकाले खड़ी थी, और देख रही थी कि कोई काम ऐसा तो नहीं, जो भूल गया हो । पास पड़ी हुई एक चौकी पर पण्डित शादीराम बैठे रोगी को भगवद्गीता सुना रहे थे ।

एकाएक लाला सदानन्द बेसुध हो गए ।

पण्डित जी ने गीता छोड़ दी, और उठकर उनके सिरहाने बैठ गए । स्त्री गरम दूध लेने के लिए बाहर दौड़ी, और मां अपने बेटे को घबराकर आवाज़ देने लगी । इस समय पण्डित जी को रोगी के सिरहाने के नीचे कोई कड़ी सी चीज़ चुभती हुई जान पड़ी । उन्होंने नीचे हाथ डालकर देखा तो उनके आश्चर्य की सीमा न रही ! यह सख्त चीज़ वही अलबम था जिसे किसी सेठ ने नहीं, बल्कि स्वयं लाला सदानन्द ने खरीद लिया था ।

पण्डित शादीराम इस विचार से बहुत प्रसन्न थे कि उन्होंने सदानन्द का ऋण उतार दिया है । परन्तु यह जानकर उनके हृदय पर चोट सी लगी कि ऋण उतरा नहीं, बल्कि दूना हो गया है । उन्होंने अपने बेसुध यजमान के पास बैठे-बैठे एक

ठण्डी सांस ली, और सोचने लगे क्या यह ऋण कभी न उतरेगा ?

कुछ देर के बाद लाला सदानन्द को होश आया । उन्होंने पण्डित जी से अलबम छीन लिया, और धीरे से कहा—“यह अलबम सेठ साहब से अब मैंने मँगवा लिया है ।”

पण्डित जी जानते थे कि वह झूठ बोल रहे हैं । परन्तु वह उन्हें पहिले की अपेक्षा अधिक सज्जन, अधिक उपकारी और अधिक ऊँचा समझने लगे ।

अकबरी लोटा

लाला भाऊलाल को खाने-पीने की कमी नहीं थी । काशी के ठठेरी बाज़ार में मकान था । नीचे की दुकानों से एक सौ रुपये मासिक के करीब किराया उतर आता था । बच्चे-कच्चे अभी थे नहीं सिर्फ दो प्राणी का खर्च था । अच्छा खाते थे, अच्छा पहनते थे । पर ढाई सौ रुपये तो एक साथ भ्रॉख सेकने के लिये भी न मिलते थे ।

इसलिये जब उनकी पत्नी ने एक दिन प्रकायक ढाई-सौ रुपये की माँग पेश की तब उनका जी एक बार जोर से सनसनाया और फिर बैठ गया । जान पड़ा कि कोई बुझा है जो बिलाने जा रहा है । उनकी यह दशा देख कर उनकी पत्नी ने कहा—“ढरिये मत आप देने में असमर्थ हों तो मैं अपने भाई से माँग लूँ ।”

लाला भाऊलाल इस मोठी मार से तिलमिला उठे । उन्होंने किंचित रोब के साथ कहा—“अजी हटो ! ढाई सौ रुपये के लिये भाई से भीख माँगोगी ? मुझसे ले लेना ।”

“लेकिन मुझे इसी जिन्दगी में चाहिए ।”

“अजी इसी सप्ताह में ले लेना ।”

“सप्ताह से आपका तात्पर्य सात दिन से है या सात वर्ष से ?”

लाला भाऊलाल ने रोब के साथ खड़े होते हुए कहा “आज से सातवें दिन मुझसे ढाई सौ रुपये ले लेना ।”

“मर्द की एक बात ?”

“हाँ जी,हाँ ? मर्द की एक बात ।”

लेकिन जब चार दिने ज्यों त्यों में यों ही बीत गये और रुपयों का कोई प्रबन्ध न हो सका, तब उन्हें चिन्ता होने लगी। प्रश्न अपनी प्रतिष्ठा का था अपने ही घर में अपनी साख का था। देने का पक्का वादा करके अगर अब न दे सके तो अपने मन में वह क्या सोचेगी ? उसकी नज़रों में उनका क्या मूल्य रह जायगा- अपनी वाह-वाही की सैकड़ों गाथाएँ उसे सुना चुके थे। अब जो एक काम पड़ा तो चारों खाने चित हो रहे। यह पहिली बार उनसे मुँह खोलकर कुछ रुपयों का सवाल किया था। इस समय अगर वे दम दबा कर निकल भागते हैं तो फिर उसे क्या मुँह दिखलायेंगे ? “मर्द की एक बात” यह उसका फिकरा उनके कानों में गूँज-गूँज कर फिर गूँज उठता था।

रु. एक दिन और बीता। पाँचवें दिन घबरा घर उन्होंने पं० विलवासी मिश्री को अपनी विपदा सुनायी। संयोग कुछ ऐसा बिगड़ा था कि विलवासी जी भी उस समय बिल्कुल खुश थे। उन्होंने कहा कि मेरे पास है तो नहीं पर मैं कहीं से माँग जाँच कर लाने की कोशिश करूँगा और अगर मिल गया तो कल शाम को तुमसे मकान पर मिलूँगा।

यही शाम आज थी। हफ़्ते का अन्तिम दिन। कल ढाई-सौ रुपया या तो गिन देना है या सारी हँकड़ी से हाथ धोना है। यह सच है कि कल रुपया न पाने पर उनकी स्त्री उन्हें डामल-फाँसी न कर देगी—केवल ज़रा-सा हँस देगी। पर वह कैसी हँसी होगी। इस हँसी की कल्पना मात्र से लाला भाऊलाल को अन्तरात्मा में मरोड़ पैदा हो जाता था।

अभी पंडित विलवासी मिश्र भी नहीं आये। आज शाम को उनके आने की बात थी उन्हीं का भरोसा था। यदि न आये तो ? या कहीं रुपये का प्रबन्ध वे न कर सके ?

इसी उधेड़-बुन में पड़े हुए लाला भाउलाल छत पर टहल रहे थे। कुछ प्यास मालूम पड़ी। उन्होंने नौकर को आवाज दी ?

नौकर नहीं था। खुद उनकी पत्नी पानी लेकर आयी। आप जानते ही हैं कि हिन्दू समाज में स्त्रियों की कैसी शोचनीय अवस्था है। पति नालायक को प्यास लगती है तो स्त्री बेचारी को पानी लेकर हाजिर होना पड़ता है।

वे पानी तो ज़रूर लाईं पर गिलास लाना भूल गई थीं ? केदल लोटा में पानी लिए हुए वे प्रकट हुईं। फिर लोटा भी संयोग से वह जो अपनी बेदंगी सूरत के कारण लाला भाउलाल को सदा से नापसन्द था। था तो नया, साल दो साल का बना, पर कुछ ऐसी गढ़न उस लोटे की थी कि इसका बाप डमरू माँ चिलमची रही हो।

लाला भाउलाल ने लोटा ले लिया वे बोले कुछ नहीं, अपनी पत्नी का बेअदब मानते थे। मानना ही चाहिए। इसी को सम्भयता कहते हैं। जो पति अपनी पत्नी का पत्नी न हुआ वह पति क्या ? फिर उन्होंने यह भी सोचा होगा कि लोटे में पानी हो तब भी गनीमत है। अभी अगर चूँकर देता हूँ तो बाल्टी में जब भोजन मिलेगा तब क्या बाकी रह जायगा।

लाला भाउलाल अपना गुस्सा पीकर पानी पीने लगे। उस समय वे छत की मुंडेर पर खड़े हुए थे। जिन बुजुर्गों ने पानी पीने के सम्बन्ध में यह नियम बनाये थे। कि खड़े-खड़े पानी न पियो सोते समय पानी न पियो, दौड़ने के बाद पानी न पियो।

उन्होंने पता नहीं कभी यह भी नियम बनाया था या नहीं कि छत की मुंडेर पर खड़े होकर पानी न पियो। जान पड़ता है कि इस महत्वपूर्ण विषय पर कुछ नहीं कहा है।

इसलिए लाला भाउलाल ने कोई बुराई नहीं की अगर वे छत की मुंडेर पर खड़े होकर पानी पीने लगे । पर मुशकिल से दो एक घूंट वे पी पाये होंगे कि न जाने कैसे उनका हाथ हिल उठा और लोटा हाथ से छूट गया ।

लोटे ने न दाहिने देखा न बायें । वह नीचे गली की ओर चल पड़ा अपने वेग में उल्का को लजाता हुआ वह आंखों से ओभल होगया । किसी ज़माने में न्यूटन नाम के किसी खुराफाती ने पृथ्वी की आकर्षण-शक्ति नाम की एक चीज़ ईज़ाद की थी । कहना न होगा कि यह सारी शक्ति इस समय इस लोटे के पक्ष में थी ।

लाला भाउलाल को काटो तो बदन में खून नहीं । ठठेरी बाज़ार ऐसी चलती हुई गली में, ऊँचे तिमंज़िले से भरे हुए लोटे का गिरना कोई हंसी खेल नहीं है । यह लोटा न जाने किस अनधिकारी के खोपड़े पर काशी वास का सन्देश लेकर पहुँचेगा ।

कुछ हुआ भी ऐसा ही । गली में ज़ोर का हल्ला उठा । लाला भाउलाल जब तक दौड़कर नीचे उतरे तब तक एक भारी भीड़ उनके आँगन में घुस आई ।

लाला भाउलाल ने देखा कि इस भीड़ में प्रधान पात्र एक अङ्गरेज है, जो नखशिख से भोगा हुआ है और जो अपने एक पैर को हाथ से सहलाता हुआ दूसरे पैर से नाच रहा है उसी के पास उस अपराधी लोटे को भी देखकर लाला भाउलाल जी ने फौरन दो और दो जोड़कर स्थिति को समझ लिया । पूरा विवरण तो उन्हें पीछे प्राप्त हुआ ।

हुआ था यह कि गली में गिरने के पूर्व लोटा एक दुकान के सायबान से टकराया । वहाँ टकराकर उस दुकान पर खड़े उस

अंगरेज़ को उसने सॉगोर्पांग रनान कराया और फिर उसी के बूट पर जा गिरा। ध्यान देने की बात है कि हिन्दुस्तानी लोटा भी आखिर वहीं गिरा जहाँ हिन्दुस्तानी आदमी गिरते हैं।

उस अङ्गरेज़ को जब मालूम हुआ कि लाला भाऊलाल ही उस लोटे के मालिक हैं तब उसने केवल एक काम किया। अपने मुँह को उसने खोल-खोल कर खुला छोड़ दिया। लाला भाऊलाल को आज ही यह मालूम हुआ कि अंगरेज़ी भाषा में गालियों का ऐसा प्रकाण्ड कोष है।

इसी समय पंडित विलवासी मिश्र भीड़ को चीरते हुए आँगन में आते दिखाई पड़े। उन्होंने आते ही पहला काम यह किया कि उस अंगरेज़ को छोड़कर और जितने आदमी आँगन में आये थे सबको निकाल कर बाहर किया। फिर एक कुर्सी आँगन में रखकर उन्होंने साहब से कहा —“आपके पैर में शायद कुछ चोट आगई है। आप आराम से कुर्सी पर बैठ जाइये।”

साहब दिलवासी जी को धन्यवाद देते हुए बैठ गए। और लाला भाऊलाल की ओर इशारा करके बोले —“आप इस शख्स को जानते हैं।” ! “बिलकुल नहीं” और मैं ऐसे आदमी को जानना भी नहीं चाहता जो निरीह राह चलतों पर लोटे से वार करे।

मेरी समझ में “He is a dangerous lunatic !” यानी यह खतरनाक पागल है।]

नहीं मेरी समझ में “He is a dangerous criminal !” [नहीं यह खतरनाक मुज़रिम है।]

परमात्मा ने लाला भाऊलाल को इस समय कहीं देखने के साथ कहीं खाने की भी शक्ति दे दी होती तों यह निश्चय है। कि अबतक विलवासी जी को वे अपनी आँखों से खा चुके होते।

वे कुछ समझ नहीं पाते थे कि बिलवासी जी को इस समय हो क्या गया है ।

साहब ने बिलवासी जी से पूछा —“तो अब क्या करना चाहिए ?”

“पुलिस में इस मामले की रिपोर्ट कर दीजिए, जिसमें यह आदमी फौरन हिरासत में ले लिया जाय ।”

“पुलिस स्टेशन है कहाँ ?”

“पास ही है, चलिए मैं बताऊँ ।”

“चलिए ।”

“अभी चलो । आपकी इजाजत होती पहले इस लोटे को इस आदमी से खरीद लें । क्यों जी बेचोगे ? मैं पचास रुपये तक इसके दाम दे सकता हूँ ।”

लाला भाऊलाल तो चुप रहे पर साहब ने पूछा—“इस रद्दी लोटे का आप पचास रुपये दाम क्यों दे रहे हैं ?”

“आप इस लोटे को रद्दी बताते हैं ? आश्चर्य ! मैं तो आपको एक विज्ञ और सुशिक्षित आदमी समझता था ।”

“आखिर बात क्या है, कुछ बताइये भी ?”

“यह जनाब ! एक ऐतिहासिक लोटा जान पड़ता है । जान क्या पड़ता मुझे पूरा विश्वास है । यह वह प्रसिद्ध अकबरी लोटा है, जिसकी तलाश में संसार भर के म्युजियम परेशान हैं ।”

“यह बात ?”

“जी हाँ जनाब ! सोलहवीं शताब्दी की बात है । बादशाह हुमायुँ शेरशाह से हारकर भागा था और सिंध के रेगिस्तान में भारा-मारा फिर रहा था । एक अवसर पर प्यास से उसकी जान नकल रही थी । उस समय एक ब्राह्मण ने इसी लोटे से पानी

पिलाकर उसको जान बचायी थी। हुमायूँ के बाद जब अकबर दिल्लीबर हुआ तब उसने उस ब्राह्मण का पता लगाकर उससे इस लोटे को ले लिया और इसके बदले में उसे इसी प्रकार के दस सोने के लोटे प्रदान किये। यह लोटा सम्राट अकबर को बहुत प्यारा था इसीसे इसका नाम अकबरी लोटा पड़ा। वह बराबर इसी से वजू करता था। सन् १७ तक इसके शाही घराने में ही रहने का पता है। पर इसके बाद लापता हो गया। कलकत्ते के म्युज़ियम में इसका प्लास्टर का मॉडल रक्खा हुआ है। पता नहीं यह लोटा इस आदमी के पास कैसे आया! म्युज़ियम वालों को पता चले तो फैंसी दाम देकर खरीद ले जायँ।”

इस विवरण को सुनते-सुनते साहब की आँखों पर लोभ और आश्चर्य का ऐसा प्रभाव पड़ा कि वे कौड़ी के आकार से बढ़कर पकौड़ी आकार की हो गईं। उसने दिलवासी जी से पूछा—“तो आप इस लोटे को लेकर क्या करियेगा?”

“मुझे पुरानी और ऐतिहासिक चीज़ों के संग्रह करने का शौक है।”

“मुझे भी पुरानी और ऐतिहासिक चीज़ों के संग्रह करने का शौक है। जिस समय यह लोटा मेरे ऊपर गिरा उस समय मैं यही कर रहा था। उस दुकान पर से पीतल की कुछ पुरानी-मूर्तियाँ खरीद रहा था।”

“जो कुछ हो लोटा मैं ही खरीदूँगा।”

“वाह आप कैसे खरीदेंगे? मैं खरीदूँगा। मेरा हक है।”

“हक है?”

“जरूर हक है। यह बताइये कि उस लोटे के पानी से आपने स्नान किया या नहीं?”

“आपने ।”

“वह आपके पैरों पर गिरा या मेरे ?”

“आप के ।”

“अँगूठा उसने आपका भुरत्ता किया या मेरा ?”

“आपका

“इसलिये उसे खरीदने का हक मेरा है ।”

“यह सब भोल है । दाम लगाइये, जो अधिक दे वह ले जाय

“यहो सही । आप उसका पचास रुपया लगा रहे थे, मैं सौ देता हूँ ।”

“मैं डेढ़ सौ देता हूँ ।”

“मैं दो सौ देता हूँ ।”

“अजी ढाई-सौ देता हूँ ।”—यह कह बिलवासी जो ने ढाई सौ के नोट लाला भाऊलाल के आगे फेंक दिए ।

साहब को अब ताव आगया । उसने कहा—“आप ढाई सौ देते हैं तो मैं पाँच सौ देता हूँ । अब चलिए ?”

बिलवासी जो अफसोस के साथ अपने रुपये उठाने लगे, मानो अपनी आशाओं की लाश उठा रहे हों ।

साहब की ओर देखकर उन्होंने कहा —“लोटा आपका हुआ, ले जाइये मेरे पास ढाई सौ से अधिक है नहीं ।”

यह सुनना था कि साहब के चेहरे पर प्रसन्नता की कूँची फिर गई । उसने झपट कर लोटा उठा लिया और बोला —“अब मैं हँसता हुआ अपने देश लौटूँगा । मेजर डगलस की डींग सुनते सुनते मेरे कान पक गए थे ।

“मेजर डगलस कौन है” ।

मेजर डगलस मेरे पड़ोसी हैं । पुरानी चीज़ों के संग्रह करने में मेरी उनकी दौड़ रहती है । गत वर्ष वे हिन्दुस्तान आये थे और

यहाँ से जहाँगीरी अण्डा ले गए थे ।”

“जहाँगीरी अण्डा” “जहाँगीरी अण्डा” । मेजर डगलस ने समझ रक्खा था कि हिन्दुस्तान से वे ही अच्छी चीज़ ले जा सकते हैं

“पर जहाँगीरी अण्डा है क्या ?”

“आप जानते होंगे कि एक कबूतर ने नूरजहाँ से जहाँगीर का प्रेम कराया था । जहाँगीर के पृष्ठ ने पर कि मेरा एक कबूतर तुमने कैसे उड़ जाने दिया, नूरजहाँ ने उसके दूसरे कबूतर को भी उड़ा बताया था कि ऐसे उसके इस भोलैपन पर जहाँगीर सौ जान से निझावर होगया, उसी क्षण से उसने अपने को नूरजहाँ के हाथ बंध कर दिया । कबूतर का एहसान वह नहीं भूला । उसके एक अण्डे को बड़े जतन से रख छोड़ा एक बिल्लोर की हाँड़ी में वह उसके सामने सदा टँगा रहता था । बाद में वही अण्डा जहाँगीरी अण्डे के नाम से प्रसिद्ध हुआ उसी को मेजर डगलस ने पारसाल दिल्ली में एक मुसलमान सज्जन से तीन सौ रुपये में खरीदा ।”

“यह बात !”

“हाँ पर अब वे मेरे आगे दून की नहीं ले सकते । मेरा अकबरी लोटा उनके जहाँगीरी अण्डे से भी एक पुश्त पुराना है ।”

“इस रिश्ते से तो आपका लोटा उस अण्डे का बाप हुआ ।”

साहब ने लाला भाऊलाल को पाँच सौ रुपये देकर अपनी राह ली । लाला भाऊलाल का चेहरा उस समय देखते ही बनता था । जान पड़ता था कि मुँह पर छः दिन की बढ़ी हुई दाढ़ी के एक-एक बाल भरे प्रसन्नता के लहरा रहे हैं । उन्होंने पूछा—बिलवासी जी ! आप मेरे लिए ढाई सौ रुपया घर से लेकर चले थे ! पर आपके पास तो था नहीं ।

“इस भेद का मेरे सिवाय मेरा ईश्वर भी जानता है । आप उसी से पूछ लीजिए । मैं नहीं बताऊँगा ”

“पर आप चले कहीं ? अभी मुझे आपसे काम है; दो घण्टे तक” ।

“दो घण्टे तक ?”

“हाँ और क्या ? अभी मैं आपकी पीठ ठोककर शाबाशी दूँगा एक घण्टा इसमें लगोगा फिर गले लगाकर धन्यवाद दूँगा; एक घण्टा इसमें भी लग जायगा ।”

“अच्छा पहले अपने पाँच सौ रुपए गिनकर सहेज लीजिए ।”

रुपया अगर अपना हो तो उसे सहेजना एक ऐसा सुखद और सम्मोहक कार्य है कि मनुष्य उस समय सहज में ही तन्मयता प्राप्त कर लेता है । लाला भाऊलाल ने अपना कार्य समाप्त करके ऊपर देखा । पर बिलवासी जी इतनी देर में अन्तर्धान हो गये थे ।

वे लम्बे डग मारते हुए गली में जा रहे थे ।

उस दिन रात्रि में बिलवासी जी को देर तक नींद नहीं आयी । वे चादर लपेटे चारपाई पर पड़े रहे । एक बजे वे उठे । धीरे से, बहुत धीरे से, अपनी सोई हुई पत्नी के गले से उन्होंने सोने की वह सिकड़ी निकाली जिसमें एक चाबी बधी हुई थी । फिर उसक कमरे में जाकर उन्होंने उस ताली से सन्दूक खोली । उसमें ढाढ़ सों के नोट ज्यों के त्यों रख कर उन्होंने उसे बन्द कर दिया । फिर दबे पाँव लौटकर ताली को उन्होंने पूर्ववत् अपनी पत्नी के गले में डाल दिया । इसके बाद उन्होंने हँसकर अङ्गड़ाई ली, अङ्गड़ाई लेकर लेट रहे और लेटकर मर गये ।

दूसरे दिन सुबह आठ बजे तक वे मर रहे ।



उपहार

(भगवती प्रसाद वाजपेयी)

विमला खाना परोस रही थी। कमल बैठा पत्र लिख रहा था। वह सोचता था कि जब इसे समाप्त कर लूँगा, तब उठूँगा। देर ही क्या है, कुछ भी तो और अधिक नहीं लिखना है। बस, यही दो-तीन- हों दो ही पक्तियाँ और लिखने को हैं कि फिर मैं हूँ और भोजन ५

और विमला मन ही मन झुंझला रही थी कि जब तक मैं शाक पकाऊँ पकाऊँ, तब तक तो आफत मचा दी। दो-दो मिनट में विकल हो-होकर पूछते रहे कि कितनी देर है-कितनी देर है ! और अब जब मैं खाना परोसने लगी, तो 'आया, आया बस अभी हाल आया' कह रहे हैं मगर आते नहीं ! बस, इनकी प्रकृति मुझे अच्छी नहीं लगती। कितनी तकलीफ़ होती है खाना पकाने में; बनाना पड़े, मालूम होजाय। और मालूम क्या हो जाय, खुद भी तो न खा सकें उसे ! फिर भी किसी तरह जो मर-खप के बना भी लूँ तो यह हाल है इनका कि मुझे ही बेवकूफ़ बनना पड़ता है। कुछ कहो, तो झट जबाब दे बैठेंगे कि फिर बनाती ही बेकार हो - मैंने तो हजार बार कहा कि महाराजिन रख लो ...मैं भी बैठी रहूँगी, इसी तरह। जब बुलाना व्यर्थ है, तो बुलाया ही क्यों जाय ? न, मैं अब बुलाऊँगी, नहीं, किसी तरह नहीं।

‘अरे सुनती हो ?’

विमला को ही लक्ष्य करके कमल ने कहा था। लेकिन विमला ने नफर भी नहीं सुना। उसने कोई उत्तर नहीं दिया। वह क्यों

उत्तर दे ? किसका उत्तर दे ? किसे उसके उत्तर की अपेक्षा है ? जब कहते-कहते हार गई, तब नहीं आये । और अब इतनी देर के बाद भी, वहीं से कहते हैं — सुनती हो ? कौन सुनती है ? कोई नहीं सुनती ! क्यों सुने कोई ? क्या पड़ी है उसे, जो सुने ? वह नहीं सुनती है । कोई नहीं सुन रहा है । कोई सुनने क्यों लग ? वह सुनती तो है, मगर नहीं सुनती । हाँ, नहीं सुनती ।

कमल अब उठकर उसके पास चला आया । वह चला तो आया, पर निकट खड़ा रह कर बोला — कुछ लोग आगये हैं और उनसे इसी समय दो बातें कर लेनी हैं । बेचारे बड़ी दूर से आये हैं । मुझसे यह नहीं हो सकता कि उन्हें बेरंग वापिस लौटा दूँ । कुछ वक्त देना ही पड़ेगा । कुछ ऐसी ही आवश्यकता है । समझती हो न ? तुम अब खाना खालो । मुझे शायद देर ही लग जाय । ... शायद क्या ? बल्कि निश्चित है देर लग जाना ।

विमला ने पहले तो चाहा कि वह चुप ही रहे अब भी, उनकी इस बात का कोई उत्तर न दे । किन्तु वह वास्तव में इस प्रकार की नारी नहीं है । परिस्थिति और कारण को लेकर उसकी मर्यादा की अवमानना करना उसकी प्रकृति के प्रतिकूल है । वह अतीत से उलझी रहती है क्योंकि उसी का प्रभाव लेकर भावव्य को देखती है; किन्तु वर्तमान की उपेक्षा उसे स्वीकार नहीं होती । अतएव उसने कहा—किन्तु क्या दस-पाँच मिनट के लिए उन्हें रोक नहीं सकते ? वे लोग क्या तुम्हारा इस समय भोजन करना भी रोक देना उचित समझेंगे ? तुम्हारी असुविधा का क्या उन्हें कुछ भी ख्याल न होगा ?

कमल ने लक्ष्य किया, विमला खुद भी भूखी है । समय भी अधिक होगया है । इसी स्थिति में उसने भोजन बनाया है । कितनी देर से वह प्रतीक्षा में बैठी है और अब, जब कि मुझे उसके साथ बैठकर खाना चाहिए, मैं उससे इस प्रकार का प्रस्ताव कर रहा हूँ ?

उसने एक बार फिर जो विमला के उत्पन्न अरुण मुख की ओर

ध्यान से देखा तो उसे अपना प्रस्ताव सर्वथा अप्रीतिकर प्रतीत हुआ। वह लौट पड़ा। लौटते हुए कह गया—अच्छा, तो मैं अभी आया। उन्हें कमरे में आदर के साथ बिठा आऊँ और साथ ही दस मिनट तक और अधिक प्रतीक्षा करने की अनुमति ले आऊँ।

‘ओह ? तुम आये हो—मेरे राधाकान्त बाबू—यह डेपूटेशन लेकर, अच्छा। लेकिन, यार बहुत दिनों में मिले हो, और फिर इस डेपूटेशन के साथ। खैर, मैं अभी आया। मैंने अभी तक भोजन नहीं किया है। कुछ इतने आवश्यक कार्यों में लगा रहा कि भोजन करने तक को समय पर न उठ सका। जा ही रहा था कि पता चला, आप लोग तशरीफ लाए हैं।’ कमल ने स्वाभाविक उल्लास-मुखरित ढंग से कहा।

‘अच्छा तो है। कर आओ भोजन, लेकिन अकेले ही अकेले भोजन कर लोगे ?’ राधा बाबू ने हास के मृदुल दोलन में, साधारणतया कह दिया—उसी प्रकार, जैसे कोई भी मित्र दूसरे से ऐसी स्थिति में प्रायः कह देता है।

‘अच्छी बात है, मेरा सौभाग्य ! चलो, तुम भी चलो।’ कमल के उच्चार के साथ उसका हार्दिक उल्लास भी मिश्रित होकर फूट निकला।

‘ऐसे नहीं जाता। इस तरह तुमको तो कुछ मालूम न होगा, किन्तु दूसरी आत्मा को जो आकस्मिक कष्ट होगा, उसे मैं कैसे सहन करूँगा ? न यार कमलेश, मुझे इस समय भोजन नहीं करना है, मैं तो यों ही कह उठा था। मैं भोजन कर चुका हूँ।’ राधा बाबू कहते-कहते गम्भीर हो उठे।

कमल ने लक्ष्य किया, यह राधाकान्त एक समय कितना चटुल था ? विलास भर इसके मारे परेशान, बल्कि एक प्रकार से आन्दोलित रहता था। और आज देखता हूँ कि इस कालान्तर में ही वह कैसा विवेकशील बन गया है।

तब उस राधाकांत के प्रति कमल पहले अजेय आदरभाव से देख कर रह गया, फिर कुछ सोच-समझ कर बोला—‘नहीं राधे; असुविधा की कोई बात न होगी। कम पड़ेगा तो कुछ और बाज़ार से मँगवा लूँगा चलो, चलो; अब तुम्हें चलना पड़ेगा।’

‘मेरे एक मित्र भी खायेंगे विमला। बड़े जबरदस्त आदमी हैं। इच्छामात्र करने से सफलता इनके चरण चूमती रही है। मुझे इनका ब्लासफ़ैलो रहने का गौरव प्राप्त हो चुका है। मुझे पता ही न था कि जेल जा-जाकर भी यह शैतान बजाय दुर्बल पड़ने के इतना मोटा हो जायगा। देखती क्या हो, वज़न में तीन मन से कम न होगा। यह जो कुछ भी तुमने बना रखा है, मैं तो समझता हूँ, केवल इसके लिए भी काफी न होगा।’ कमल ढूँढ़-ढूँढ़ कर ऐसे शब्दों का प्रयोग कर रहा है। जिससे विमला को पता चल जाय कि उसका यह मित्र ऐसा-वैसा आधारण व्यक्ति नहीं है बड़ा आदमी तो वह है ही, साथ ही उसका धनिष्ठ मित्र भी है।

तब विमला ने स्वामी के इस धनिष्ठ मित्र को केवल एक दृष्टि से देखकर साड़ी को स्तर पर, आगे तक, कुछ और खिसका लिया। दो थालियों में भोजन जैसा परोस कर रखा था, उसे पूर्ववत् न रखकर उसमें थोड़ा-थोड़ा कम कर लिया, क्योंकि आकस्मिक आतिथ्य और समय असमय के उल्लापन के लिए जो मिष्ट और सलत्ते खाद्य पदार्थ उसने बना रखे हैं, उनका भी उपयोग करना है। बाज़ार से ही कुछ मँगाना पड़ा, तो फिर गृहस्थी को मर्यादा ही क्या रही ?

तुरन्त उसने कहा—‘आइये ।’

तब कमल अपने राधे को लेकर भोजन करने बैठ गया। वह भोजन कर रहा है और साथ ही साथ कुछ सोचता भी जाता है यों निरन्तर उसे कुछ न कुछ सोचना पड़ता है। बात कम, काम अधिक ही

यही उसकी प्रकृति है। किन्तु जब कोई मित्र आया हो और साथ में बैठा भोजन कर रहा हो, तब भी मौन ही बना रहना तो कुछ अधिक उत्सम या आवश्यक, प्रीतिकर या शोभन प्रतीत नहीं होता। मानो इसी बात को लक्ष्य कर कमल ने कह दिया — और कहो राधे; खूब अच्छी तरह से हो न ? किसी प्रकार की कोई असुविधा या कष्ट या ... और क्या कहूँ ?

अन्तिम शब्द कहते-कहते कमल राधे के मुँह की ओर देखकर हंस पड़ा।

‘देखता हूँ, तुम बहुत बड़े आदमी होगये। यहाँ तक कि तुमने इतना वैभव अर्जित कर लिया, इतना कि तुम्हें देखकर मुझे ईर्ष्या होती है, तो भी तुम्हारा वह श्लाघार्हण सार्वत्र्य ज्यों का त्यों बना है !’ राधे भोजन करते हुए अपनी यह बातें इतने मन्द क्रम से करता जाता है कि न तो उसकी आहार-गति प्रतिहत होने पाती है, न वार्ताविनोद में ही किसी प्रकार की अरोचक मति का संयोग ही पाता है। साथ ही साथ वह कभी-कभी विमला पर भी एक दृष्टि डाल देता है !

‘तो तुम्हारा ख्याल यह है कि काल-गति से तुम्हारी प्रकृति भी बदल जाती है ! लेकिन भाई राधे, मैं ऐसा नहीं मानता। जीवन के प्रकम्पित अवधान हमारी गति बदल सकते हैं, हमारे आचार-व्यवहार की रूपरेखा को भी उलट-पुलट डालते हैं। मैं यह मानता हूँ। किन्तु किन्तु हमारी नैसर्गिक प्रकृति पर उनका अनुशासन कभी चल नहीं सकता, क्षणिक परिवर्तन करने में भले ही वे यदा-कदा सफल होते रहें।’

राधे कमल की इस बात को सुनकर मुसकराने लगा।

और कमल ने उसके इस हास की यथार्थता को लक्ष्य करके कहा ‘जान पड़ता है, मेरे साथ तुम्हारा मतभेद पूर्ववत् बना है।’

विमला दोनों को बातें करती छोड़कर भण्डार में चली गई थी।

लौट आकर उसने दो-दो कटोरियों में मिष्ठान्न और कुछ नमकीन पदार्थ दोनों थालियों के निकट रख दिए । तब उसी समय एक कटोरी से कुछ खुरमे एक साथ उठाकर मुँह में डालने के पूर्व राधे बोला—‘तुम्हारे गार्हस्थ्य-जीवन के इस सफल स्वरूप के लिए मैं तुम्हें बधाई देता हूँ कमलेश !’

कमल हँसने लगा । बोला—‘अच्छा-अच्छा यह बात है ! धन्यवाद । फिर विमला की ओर उत्फुल्ल लोचनों से देखकर कहने लगा—‘सुनती हो विमला, राधे तुम्हें बधाई दे रहा है ।’

विमला चाहती तो उपर में कुछ कह सकती थी । किन्तु वह कुछ कह न सकी । हाँ, धिक्कप में थोड़ी मुढ़कर, कढ़ाई में रखे हुए शाफ को एक कटोरी में सम्हालकर रखने में व्यस्त तो अवश्य हो गई ।

तब राधे ने उस समय न तो विमला को कुछ कहने का अवसर दिया, न कमलेश को । अब वह उसकी उस बात पर आशया, जिस पर उसे मतभेद था । वह बोला हाँ, तुम्हारी उस बात को तो मैं भूल ही गया था’ प्रकृति परिवर्तन के सम्बन्ध में जो तुमने अभी कही थी ।

हाँ, हाँ कहो, मैं जानना चाहता हूँ, इस विषय में तुमने क्या अनुभव किया है, तुम्हारे दिचार क्या हैं, कमल ने कहा ही था कि राधे बोल उठा ‘असल बात यह है कमलेश भाई, कि मनुष्य की प्रकृति ही को पहले ज़रा समझ लेने की ज़रूरत है । क्या उसकी प्रकृति है, और क्या अप्रकृति वास्तव में इसी का समझ लेना आवश्यक है लोग प्रायः कहा करते हैं, फ़लां आदमी तो बिल्कुल ही बदल गया । लोग उसकी रूप-रेखा उसके आकार-प्रकार को देखकर ही प्रायः इस तरह की बातें कह डालते हैं ? पर परिस्थितियों के चक्र में घूमते और छिन्न-भिन्न होते हुए उसके क्षण-क्षण के जीवन को देखकर वे यह नहीं सोचते कि प्रकाश सदा प्रकाश ही रहता है यह बात दूसरी है कि कोई प्रकाश दिन का हो, कोई निशा का । अब यहां प्रश्न यह है कि दिन का प्रकाश तो प्रकाश है और उसे संसार स्वीकार करता है । किन्तु जो प्रकाश रजनी अन्तर से फूटा हुआ है, वह अन्धकार क्यों है ?

तब तत्काल उत्तरंग मानस से कमलेश बोल उठा—‘वन्दरफुल ! कितनी अच्छी बात तुमने अनायास कह डाली ! वाह !!

विमला ने उसी समय एक बार राधे के उस तेजोमय मुख की ओर दृष्टिचप किया । थोड़ी देर से उसकी छाती के भीतर भूकम्प-कालीन रत्नकर की भांति जो भीम विस्फूर्जन प्रध्वनित हो रहा था, राधे के इस कथन को लेकर और फिर एक बार उसकी ओर देखकर आप वह विलकुल शिथिल, ध्वस्त हो उठा । जिस व्यक्त अतीत ने आज अभी उसके मन प्राण तक को बार-बार स्तम्भित, विकल-विकम्पित कर करके एक अव्यक्त अभियोग से अतिशय अस्थिर किंवा विमूढ़कर डाला था, निमेष-मात्र के इस वैकल्पिक उपायन से उसके पराभूत चित्त की सारी दुर्बलता बात की बात में निःप्रभ प्रशान्त हो उठी ।

इसी समय भोजन करके दोनों मित्र उठ खड़े हुए ।



रात के ग्यारह बजे हैं । कमलेश सो रहा है । पास ही विमला भी लेटी हुई करवटें बदल रही है । कुछ स्वप्न उसके मानस-पट पर उतर आये हैं ।

‘तुम्हारी यह आदत अच्छी नहीं, है । भैया !’

‘कौन सी !’

‘पूछते हो कौन-सी !’

‘लो, जब मालूम नहीं है’ तब पूछना भी गुनाह है !’

‘हाँ, गुनाह । मैं तुमसे भैया जो कहती हूँ ।’

वह चुप रह गया । उसका मुख यकायक उतर गया । कोई बात वह फिर न कह सका । तब वह चलने लगी । कुछ उद्विग्न होकर अपना तिरस्कार अपने ऊपर लादकर । किन्तु उसी समय उसने सुना, वह कह रहा है—‘मेरी इस बुरी आदत के अनुभव करने का तुम्हें अब कभी अवसर न मिलेगा विमला । मैं यहाँ से चला जाऊँगा ।’

वह लौट पड़ी। अपनी मर्यादित गम्भीरता से विचलित होकर वह बोली—‘सचमुच, क्या तुम कानपुर छोड़ दोगे ?’

‘छोड़ना ही पड़ेगा विमला; क्योंकि मनुष्य की प्रकृति बदल नहीं सकती’। उत्तर में वह कुछ कह न सकी थी, यद्यपि उन निर्वाक, निस्पन्द निष्ठुर क्षणों ने उसके इस जीवन को ही व्यर्थ कर डाला, तो भी उन क्षणों को वह फिर कभी न पा सकी। आज तक न पा सकी।

किन्तु यह था कितना दृढ़प्रतिज्ञ ! उसने कानपुर छोड़ ही दिया। यद्यपि उसने कोई अपराध नहीं किया था। एक मात्र यही आदत थी उसकी कि वह मुझे देखकर पुलकित हो उठता था। उसके उस हास्य-मुखरित आनन की उद्दीप्त आभा, उसकी उल्लास तृप्त आंखें, अपना आन्तरिक भाव प्रकट करने का लोभ संवरण न कर सकती थी। मुहल्ले की बात ठहरी। वह कभी अपनी सखियों के साथ निकलती, कभी माँ-भाभी के साथ और इन सबके साथ निकलने पर भी वह उसकी ओर एक बार देखे बिना मानता न था। फलतः एक अदम्य बहिरभिमुखी लज्जा से वह बिलकुल संकुचित तथा अभिभूत हो उठती थी।

बस, यही उसका अपराध था—और उससे संलग्न यही उसकी असुविधा ? और उसके बाद यह आज का दिन है।

‘तुम्हारे गार्हस्थ्य जीवन के इस सफल स्वरूप के लिये मैं तुम्हें वधाई देता हूँ, और मेरे गार्हस्थ्य जीवन का वह कैसा सफल स्वरूप है !, किन्तु जो प्रकाश रजनी के अन्तर से फूटा हुआ है, वह अन्धकार क्यों है ?’ कौन कहता है कि वह अन्धकार है ! क्या अब भी किसी में इतना साहस है कि वह उसे अन्धकार कह सके ? किन्तु यह बात तो तुमने अपने आपको देखकर कह डाली है; क्योंकि तुम एक प्रकार के अकल्पित स्वप्न हो। किन्तु यह तो एक कविता हुई और इस विमला

के भीतर जो नारी है, वह तो वैसी उस प्रकार की निरी कविता नहीं है, उसका एक शरीर है; एक हृत्पिण्ड । कभी उसे छूकर देखते, तो जान पाते कि बाहर से प्रकाशमयी भलक मारने वाली इस विमला के भीतर का अन्धकार अभी तक पूर्ववत् स्थिर है । अपने स्थान से वह टस-से-मस भी नहीं है । अभी तक उसके भीतर की गर्वित नारी उसी प्रकार तृषित है, जैसी वह कभी पहले थी । उसके प्रकृति स्वरूप का साँगो-पाँग अर्थ किया ही नहीं जा सका—यहां तक कि वह अभी तक मां भी नहीं हो सकी ! और फिर भी तुम उसके गार्हस्थ्य जीवन को साफल्य देखने चले थे ! ओह ! इस परिवार का अन्तरंग न देखकर उसके बाह्य स्वरूप पर तुम ऐसे मग्न हो उठे कि एक वधाई भी उसे दे डाली । किन्तु तुम्हारी यह वधाई तो उन्हीं के लिये थी । मेरे साथ उसका सम्बन्ध क्या ? न, वह वधाई मेरे लिए नहीं है, नहीं है ।

किन्तु ठीक तो है । उन्होंने कह डाला था—‘सुनती हो विमला राधे तुम्हें वधाई दे रहा है’ ।

‘लेकिन उनके कहने से भी वह वधाई मेरे लिये नहीं हो सकती । वह उनके लिये थी, हाँ उन्हीं के लिये । तो क्या वास्तव में वे वधाई के पात्र हैं ? क्यों भला ? क्या वे वधाई के पात्र केवल इसलिए हैं कि मेरे जीवन की यह धारा भी उन्हीं के साथ-साथ प्रवाहित हो रही है । तो तुम सोचते हो कि यह विमला अभी तक इसमें समर्थ है कि उसकी संगति का योगमात्र किसी को भी वधाई का पात्र बना सकता है ? उफ़, तुम ऐसा क्यों मानते हो राधे भैया ? क्या तुम अपनी प्रतिज्ञा भूल गए ? क्या तुम्हें याद नहीं रहा कि तुमने किसी को कुछ कहा था ? कहा था कि मेरी इस बुरी आदत के अनुभव करने का अब तुम्हें कभी अवसर न मिलेगा ?...तो फिर इतने दिनों के बाद तुमने यह अवसर क्यों दिया ?’

भर, भर, भर !

ये आंसुओं के बूंद हैं कि सुधारण्व के मोती !

ओह ! जीवन के ये दस वर्ष यों ही बीत गए । युग पलटा, कितने भूकम्प आए । कितनी रिम-रिम रातें, कितनी शारदी निशायें, कितने वासन्तिक दोहन आए और गए, किन्तु राधे की छाया भी कहीं न देख पड़ी और एक युग के बाद, जान बूझ कर भी नहीं, अनायास वे जो इस कुटीर में आ ही पड़े, तो यह विमला, यह मूर्ति कालिमा अपने आपको न देखकर दोष देती है उसे, जो दिवाकर की भांति परेण्य और मनस्वी है !

‘तो तुम मुझसे बोले क्यों नहीं ? कुल विस्मय और कुल दुलार से ओत-प्रोत होकर तुमने मुझे निवट पाकर, मेरा नाम लेकर पुकारा क्यों नहीं ? तुम्हारी मुद्रा इतनी गम्भीर क्यों बनी रही ? एक बार भी सिर उठाकर तुमने मुझे ध्यान से देखा क्यों नहीं ? हूं, मुझसे छूटकर जाओगे कहां !’

भर, भर, भर !

ये अमृत के बूंद क्रमागत रूप से क्यों आ रहे हैं ? भरने से बूंद तो यों निरन्तर आ सकते हैं ? किन्तु इस प्रकार के अमृत बूंदों को वह कहां से लाएगा ? और उनके निस्त्राव के साथ यह निःस्वन कैसा है ! ये रुदन की सिसकियां हैं कि निर्भर की उत्ताल ऊर्मिमालाओं का अजस्र मुखरित महोलास ।

×

×

×

‘ऐं ! तुम रोती हो विमला ?’

यकायक उठकर भट से विद्युत-प्रकाश प्रस्फुटित कर कमल विमला के पलंग पर आकर उससे मिश्रित होकर बैठ गया । फिर उसके

सिर की कुन्तलराशि, बेणी और उसके अन्तिम छोर तक अपना वाम हस्त फेरते हुए बोला—‘रोती क्यों हो विमला ? बतलाओ । मैं जानना चाहता हूँ, क्या मुझसे कोई अपराध हुआ है ।’

अब विमला आंसू पोंछकर, स्थिर होकर, बैठ गई । उसका एक हाथ अब भी कमल के हाथों में था । उसके रुद्र गम्भीर मुख की अप्रकृत भंगिमा देखकर कमल यकायक स्तब्ध हो उठा और उसी समय विमला बोली—‘अपराध ? अपराध की बात पूछते हो ?’

‘हां ।’

‘तो इस राधे को तुम अन्दर क्यों ले आए ! किस से पूछकर ले आये !’

कमलेश अवाक् हो उठा । तुरन्त तो वह कोई भी उत्तर न दे सका । किन्तु क्षण-भर के बाद बोला—‘वह मेरा एक मित्र था, चिरपरिचित मित्र, उसका स्वागत स्तब्ध करना मेरे लिए आवश्यक था । किन्तु वह कोई भी हो, उसके सम्बन्ध में इतना सोचने की आवश्यकता ही क्या है ?’

‘वह क्यों आया था ?’

‘एक प्रस्ताव लेकर ।’

‘क्या उत्तर दिया ?’

‘उसकी बात मान लेना ही मैंने उचित समझा । स्वदेश के पीछे उसने अपना जीवन उत्सर्ग कर रखा है । उसे निर्विरोध कौंसिल में जाना चाहिए । उसके पक्ष में मैंने अपने आपको रोक लिया है ।’

‘जी—व—न—उ—त्स—र्ग कर—रखा है !’ —विमला ने अति-शय मन्द स्वर में अटक-अटककर इस तरह कहा कि कमल उसकी अपरूप मुद्रा को देखकर चकित-स्तम्भित हो उठा । क्षणभर रुककर बोला—‘बात क्या है विमला ? मैं ज़रा साफ़-साफ़ जानना चाहता हूँ ।’

‘वह मेरा शत्रु है। मेरी जीवन-धारा को उसने व्यर्थ ही में विकृत करने की चेष्टा की है। मुहल्ले के नाते से मैं उसकी बहन होती हूँ। फिर भी जानबूझकर उसने मेरी अवहेलना की। मैं इसे कैसे सहन कर सकती हूँ?’

×

×

×

‘अरी पगली—वह मेरी ही भूल है। लेकिन तुम जानती हो विमला, मैं कुछ आज का नया भुलकड़ नहीं हूँ... खैर, मुझे इसका दुःख है।’ चलते-चलते वह अपनी सोने की घड़ी तुम्हें भेंट-स्वरूप दे गया है। उसने कहा भी था—‘यह घड़ी मेरी बहन को दे देना। तुम उसे ले लो अभी। वह मेरे कोट के भीतरी जेब में पड़ी है।’

और विमला सोचती है —यह उपहार है कि मृत्यु !

—

कड़ियां

(अज्ञेय)

प्रभात तो नित्य ही होता है, किन्तु ऐसा प्रभात ! सत्य को जान पड़ रहा है, उसने अबों बाद ऐसा प्रभात देखा—शायद अपने जीवन में पहली बार देखा है। उसमें कोई नूतनता नहीं है—कोई विशेषता नहीं है—और यह चिर-नूतन है अत्यन्त विशिष्ट है ..

आज उसे देहली से मेरठ ले जायेंगे, वहां से उसकी कल रिहाई होनी है। सत्य तीन वर्ष से देहली जेल में पड़ा है। उसी कांग्रेस-आन्दोलन के सम्बन्ध में सजा हुई थी—एक सभा का प्रधानत्व ग्रहण करने के लिए। उस दिन से वह वहां बैठा अपने दिन गिन रहा था और अपनी मशकत कर रहा था। उसके लिए प्रभात में कोई विशेषता नहीं होती थी—जेल में प्रभात क्या है ? मशकत करने का एक और दिन।

पर आज ! आज वह जेल से निकल कर लारी में बैठा है। वह पुलिसवालों से घिरा हुआ है, पर जेल की दीवारों से बाहर तो है ! वह अभी तक कैदी है, पर अब कल तो नहीं रहेगा ! और कल .. कल उससे कौन-कौन मिलने नहीं आएगा ! तीन वर्ष तक वह अकेला पड़ा रहा है, पर कल ! जो उसे तीन वर्ष से भूले है, कल उन्हें याद आयगा कि उनका एक मित्र कभी जेल गया था और प्रख्यात पाकर निकला है ! कल वे उसे घेर-घेर कर कहेंगे, तुम्हारे बिना हमारा जीवन निस्सार था। तुम देश के उद्धारकर्त्ताओं में से एक हो—भारत-माता के सुपुत्र ! तुम्हारी देश को बहुत आवश्यकता है। और वह

गौरव से कहेगा, अभी मैं और बीस दफे जेल जा सकता हूँ—जाऊँगा ।
अभी तो मैं कर ही क्या पाया हूँ ।

क्योंकि जो कोई नैतिक जुर्म करे वह तो दोषी ही होता है; पर जो राजनैतिक कार्य करे, उसका तो गौरव बढ़ना ही चाहिए ...

सत्य प्रभातकालीन सूर्य में यही गौरव का स्वप्न देख रहा है ।
इसीलिए उसे जान पड़ता है, ऐसा प्रभात कभी नहीं हुआ ! क्योंकि
आज तो सूर्य मानो उसी के तेज से चमक रहा है—मानो उसी का
पथ आलोकित करनेको निकला है ।

लारी चली । कोटले के पास से घूमकर वह जमुना के किनारे हो
ली । वह सामने बिजली घर है—अरे, यह कहाँ तक पानी भर आया
है । सुना तो था कि नदी में बाढ़ आई है, पर इतना पानी ! सड़क
से कुछ ही दूर रह गया है, तमांग खेत भर रहे हैं, मकई गलकर गिर
रही है—बेचारे किसान अपने फूस के छप्पर उठा-उठा कर सड़क पर
ले आए हैं ...

हाय गरीबी ? देखो, ये लोग कैसे डिब्बों में भरे अचार की तरह
भीज रहे हैं—और आस-पास ही इनके पशु खड़े हैं... लड़-लड़कियाँ
रो रही हैं—खाने को नहीं है—और जब कोई भाग्यशालिनी माँ अपनी
बच्ची को एक रोटी का टुकड़ा ऐसे लाकर देती है, मानो स्वर्ग की
सारी विभूति छीन लाई हो, और उसे दे रही हो, तब दूसरे भूखे बच्चों
की मुग्ध आँखों के आगे ही कोई कुत्ता आकर उस टुकड़े को छीन ले
जाता है । उसमें टुकड़े की रक्षा करने की शक्ति नहीं है—भूखा
मानव भूखे कुत्ते से भी कमज़ोर होता है ...

पर इनका जीवन कितना सरल होता है । दिन-भर भूखे रहते हैं,
दुःख भेलते हैं, रोते-फलपते हैं, किन्तु जब रात को सोने लगते हैं, तब
शान्त और सन्तुष्ट ! इनका जीवन कैसा सदा प्रेम से भरा रहता होगा—

इनके जीवन में तो एक ही भावना होती होगी—प्रेम की। लोभ, मोह और क्रोध के लिए इसमें स्थान कहाँ होगा ! और मैं इनकी सेवा करूँगा, इनका स्नेह पाऊँगा ..

अब छूटकर इन्हीं पीड़ितों की सेवा करनी है। अब की ऐसा यत्न करूँगा कि अपने राजनैतिक कार्य के साथ-साथ कुछ समाज सेवा भी कर सकूँ। बाढ़ से इन लोगों को उबारने के लिए चन्दा इकट्ठा करना होगा ..

लारी तेज गति से चली जा रही है मेरठ की ओर, और सत्य का मन उससे भी तेज गति से चला जा रहा है मेरठ से भी आगे भविष्य की ओर ..

यह क्या है ? वह कौन है ?

सत्य देखता है—एक अघेड़ उम्र का आदमी, नंगे-बदन; हाथ में लाठी लिए दौड़ा जा रहा है, और बीच में एक घीभत्स हँसी हँस कर कहता जाता है, “वह पाया ! तेरी...!” और उस से कोई आठ-दस गज़ आगे एक देहाती युवती है—भय, पीड़ा, लज्जा, करुणा और एक अवर्ण्य भावना—एक बलिदान या अभिमान या दोनों की मुद्रा—का एक जीवित पुंज लहँगे की परिमा में सिमट कर भागा जा रहा है। भागा जा रहा है जान लेकर। ओढ़नी का पता-नहीं है, बाल खुले हुए हैं। बड़ी-बड़ी आँखें फटी जा रही हैं—भूखा शरीर पता नहीं कैसे लहँगे के बोझ को सम्भाले हुए है—जब वह उछलती है, तो लहँगा कुछ उठ जाता है, घुटनों तक उसकी टांगें दीख जाती हैं। टांगें भी पतली, बरसों की भूखी और पैर में चाँदी के कढ़ों के नीचे खून लग रहा है, पर वे थमते नहीं—जमीन पर भी टिकते नहीं, शिकार और शिकारी का अन्तर कम नहीं होता ...

लारी उस युवती से आगे निकल गई है—सत्य गर्दन झुकाकर—देख रहा है...

यह क्या लाठी फेंकेगा ? वह औरत है, या दानवी ? एक उछाल-सत्य ने देखा, अब की बार क्षण भर के लिए घुटनों से भी बहुत ऊपर तक लहंगा उठ गया है—वह कूद पड़ी है जमुना की बाढ़ में—वह गिरी—ओफ़ ! यह तो कांटों की एक बड़ी भाड़ी में गिरी और धँस गई—जब तक निकलने की चेष्टा करेगी, तब तक पानी में और कीच में डूब जायगी । कैसी—घुट-घुट कर और कांटे ..

पर अब कुछ नहीं दीखता । लारी बहुत आगे निकल आई है । केवल लारी के पहियों से उठी हुई धूल और सरकंडे के झुरमुट । और लम्बे-लम्बे घने भाऊ । और कहीं-कहीं थोड़े-से नरसल । और एक अर्जुन के पेड़ पर से उड़ा जा रहा नीलकण्ठ और जमुना का प्रवाह—एक साथ ही जुड़ और गम्भीर, प्रशान्त और उद्देगपूर्ण ।

लारी जमुना को पार कर रही है ।

कहाँ गया वह उत्साह ? कहाँ गया वह प्रभात का सौन्दर्य ? कहाँ गई वह तीन वर्षों के बाद छूटने की उत्तेजना ?

सत्य निष्प्रभ-सा लारी में बैठा है । उसकी तनी हुई शिराएँ धीरे-धीरे ढीली पड़ रही हैं, और साथ-ही-साथ उसकी उत्तेजना और उसके उल्लास भी ठण्डे होते जा रहे हैं । जिस गौरव-पूर्ण सार्वजनिक जीवन की उसने कल्पना की थी, उसमें इसके लिये स्थान नहीं था । इस अनियंत्रित उन्माद के लिये—इस विशेष प्रकार की पीड़ा के लिए । और सबसे बढ़कर इस भयंकर निस्सहायता के लिए, जिसका उसने आज लारी में बैठे-बैठे अनुभव किया, जिसके कारण उसे वह रोमांचकारी दृश्य देखना पड़ा ..

वह कौन था ? वह कौन थी ? वह क्या था ? सत्य इन प्रश्नों पर अपनी बुद्धि की कुल शक्ति खर्च कर चुका है .. पर उसकी समझ में

कुछ नहीं आया। और जब तक वह समझ नहीं लेगा, उसे चैन नहीं मिलेगा...

नशा उतर गया है, उल्लास बैठ गया है, उपोजना ठण्डी पड़ गई है; पर नशे के बाद बदन टूटता है, उल्लास के बाद थकान आती है, उपोजना के बाद मूर्छना। सत्य के हाथ बहुत थोड़े-थोड़े कांप रहे हैं, और उसका मन उद्वेग से भर रहा है।

वह जो मैंने देखा, वह क्या हो रहा था? उसका और उसका क्या सम्बन्ध था? उस आदमी का मुँह जिस भाव से विकृत हो रहा था, वह क्रोध की ज्वाला थी या वासना की; वह उसके शरीर पर अपनी क्रोधाग्नि शान्त करना चाहता था, या कामाग्नि? क्यों? वह कुमारी थी, या विवाहिता? (विधवा तो नहीं थी...)

जासूसों के संशयों की भांति अनेक चल-चित्र सत्य के सामने से एक-एक करके जा रहे थे। वह उसकी स्त्री है, वह सती है, पर उसका पति उस पर सन्देह करता है। नहीं वह, असती है, और पकड़ी गई है। वह किसी और की स्त्री है, और उसके पास प्रेम का प्रस्ताव लिए आई है, यह धमका रहा है। वह अविवाहित है, यह उसका प्रेमी है; उसने विश्वासघात किया है, यह बदला ले रहा है। वह उसे प्रेम नहीं करती, यह ईर्ष्या करता है...

नहीं, उसका दोष नहीं है। उसका पिता उसकी शादी और कहीं करना चाहता है, वह आज्ञा मान लेती है, इसलिए उसे क्रोध आ गया है। तभी तो उस लड़की के मुख पर ऐसा विचित्र भाव था—जिसमें साथ ही भय और करुणा, ग्लानि और पीड़ा, और वह बलिदान और अभिमान का सम्मिश्रण हो रहा था।

यह तो तब भी हो सकता है, यदि वह बिल्कुल अबोध बाला ही हो, प्रेम व्यापार से अपरिचित और वह कामी अपनी वासना की तृप्ति

के लिए उसे अकेली पाकर पकड़ने दौड़ा है। यह भी हो सकता है — उसके मुख पर जो हिंस्र भाव था, वह क्रोध भी हो सकता है और उग्र, दीप्त कामलिप्सा भी। और उस लड़की का...

उसका मुख, वह फटी-फटी सी आँखें ..

सत्य अपनी आँखें मूंद कर उस दृश्य का पुनर्निर्माण करने का यत्न करता है। पर, कल्पना में उसे उस लड़की का मुख क्यों नहीं दीखता वह सामने जमुना का बड़ा हुआ गँदला पानी—वह सरकंडों के भुर-मुट—ये कँटीली भाड़ियाँ—वह पीछे लाठी लिए दौड़ा आ रहा है—वह कूदी—उसके अस्त-व्यस्त कपड़े और बिखरे बाल—उड़ता हुआ लहंगा—सब कुछ दीखता है, पर मुख क्यों नहीं याद आता। सत्य खीझकर आँखें खोलता है, फिर बन्द करके केवल उसका मुख पर ध्यान केन्द्रित करता है। पर वहाँ तो शून्य ही शून्य दीखता है, मुख नहीं। वह प्रकम्पित चोली, वह लहंगा—

नहीं लहंगा-बंहगा कुछ नहीं सोचूँगा ! वह मुख ।

सत्य फिर चेष्टा करता है। उसके लिए वह बहुत धीमे में उस मुख की एक-एक विशेषता का वर्णन करता है, और उसे ध्यानावस्थित करके उसे मूर्त आकार देने की चेष्टा करता है।

बिखरे हुए केश, रंग—न सांवला न गोरा, कुछ साँवलेपन की ओर अधिक; गठन न सुन्दर, न कुरूप; किन्तु एक अनिर्वचनीय लुनाई लिए हुए; मँवे—मानो एक दूसरे को छूने के लिए बाँहें फैला रही हों; आँखें—आँख तो सोची ही जा सकती हैं; शब्दों में बंध नहीं सकतीं, नाक—छोटी, सीधी, ओठ खुले, निचला ओठ कुछ भरा हुआ, कोने खिंचे और कुछ नीचे झुके हुए, कोने के पास क्या तिल और ठोड़ी—

स्वाक-धूल ! सत्य कल्पना-क्षेत्र तो वैसा ही शून्य है ! वह उसके मुख के एक-एक अंग की एक-एक गूँधी का बखूबी वर्णन कर सकता है

पर उसके मूर्त-चित्रण में उसकी कल्पना-शक्ति जवाब दे जाती है ।

वह झुंझुंझुंकर सोचता है, इस विषय को मुला दूंगा । वह मुँह फेर कर सबक पर भागती हुई लारी के एंजिन के बानेट (शीर्ष) पर लगे हुए गरुड़-चिन्ह की ओर देखने लगता है, वह पीतल का गरुड़ पर फैलाए ऐसा सन्नद्ध खड़ा है, जैसे किसी शिकार पर झपट पड़ने की क्रिया में ही रुक गया हो ।

या, जैसे वह स्त्री बाढ़ के पानी में अधड़की भाड़ी में कूदते समय थी—सना हुआ शरीर, फैले हुए हँसे की तरह लहँगा, नंगी टांग.....

छिः ?

मानो संसार में उन नंगी टांगों के अतिरिक्त कुछ रह ही न गया हो—क्यों बार-बार मेरी दृष्टि के आगे वे ही आ जाती हैं ? क्या, इन दो-तीन वर्षों के दूषित वातावरण ने मेरे मन को भ्रष्ट, पतित, व्यभिचारी बना दिया है ? मेरे मन को, जिसे अभी अपने देश का इतना काम करना है, जो भारतमाता का सुपुत्र होने का दावा करता है ?

और सत्य का—भारतमाता के सुपुत्र-सत्य का—ढीठ मन फिर भागा । अब की बार बड़ी दूर । सैकड़ों मील की मेंडिल मार कर, सैकड़ों दिनों का व्यवधान पार कर । तब, जब सत्य ने नया-नया बी० ए० पास किया था । और दृष्टियों के लिए काश्मीर जा रहा था । और किस सम्बन्ध से वह इतनी दूर भागा, यह वही जाने । सत्य तो नहीं जानता—इस पर ध्यान देने की अभी फुरसत भी कहां ? वह तो अभी कुछ और ही दृश्य देख रहा है । वह नहीं देख रहा, दृश्य स्वयं ही बाढ़ की तरह उमड़ता हुआ उसकी चेतना को परिप्लावित कर रहा है ।

(३)

मुजफ्फराबाद की तलहटी में, दोपहर ।

सेलम और कृष्णगंगा दोनों में ही बाढ़ आई है। दोनों के ही पुल खतरे में हैं। जो लोग ऐबटाबाद से काश्मीर आने हैं, वे यहीं पर दोनों नदियाँ पार करते हैं; किन्तु पुल खतरे में होने के कारण आजकल लारियाँ उन्हें पार नहीं कर सकतीं, इसलिए ऐबटाबाद से आने वाले यात्री दोनों पुल पैदल पार करते हैं और दुमेल में दूसरी लारियों में बैठकर जाते हैं। और जो लारियाँ कोहाला होकर आती हैं, वे इन यात्रियों के लेने के लिए दुमेल में रुकी रहती हैं।

सत्य जिस लारी में आया है, वह रात को दुमेल पहुँची थी और एक दिन दुमेल में ही प्रतीक्षा में रुकेगी। सत्य को कोई जल्दी नहीं थी, इसलिए वह इस प्रोग्राम का विरोध नहीं कर रहा है।

वह रात ही को अपनी छोटी दूरबीन, दो-तीन कम्बल, कमीज़ निकर और तौलिया लेकर दुमेल में सेलम का पुल पार करके दोनों नदियों के संगमस्थल के ऊपर त्रिकोण में बसी हुई बस्ती मुज़फ़्फ़राबाद में घुस गया था। उसे आशा थी, कहीं रात काटने का प्रबन्ध हो जाएगा। जब उसे निराशा हुई, तब वह सड़क पर से नीचे उतर कर कृष्णगंगा के तट पर पहुँचा। वहीं वह बिस्तर लगाने योग्य कोई स्थान ढूँढ़ रहा था, तो उसने देखा, वहाँ से कुछ दूर पर एक छोटे-से सोते के पास जिसमें किसी वन्य-वृत्त की आगे से निकली हुई छाल पर से होकर मोतियों की लड़ी-सी पानी की धार आ रही थी, दो-चार बड़ी-बड़ी सिलें जोड़ कर एक चबूतरा-सा बनाया गया था। उसने मन-ही-मन सोचा, 'मुसलमानों की पाकगाह', और उस पर कंदल बिछाकर पढ़ गया।

वह थी कल की बात। सुबह वह उठा, तो देखा, उस भरने पर कई स्त्रियाँ पानी भरने के लिए जमा हो रही हैं। उसे उठा देखकर उन्होंने लम्बे-लम्बे घूँघट तान लिए। सत्य थोड़ी देर उन्हें देखता रहा, फिर उठ कर घूमने लगा और आस-पास लगी हुई जंगली स्ट्राबरी बीन बीन कर खाने लगा।

अब तीसरे पहर वह दोबारा सो कर उठा है। जंगली अखरोट के पेड़ों से छनकर आती हुई धूप में दोपहर-भर सोने से उसके शरीर में एक अपूर्व मस्ती छा गई है। वह उठकर कर नदी के किनारे पर बैठा है और नहाने का निश्चय करके भी आलस किया जा रहा है—वह मस्ती इतनी मधुर मालूम हो रही है...

सत्य जहाँ बैठा है, वहाँ से कृष्णगंगा के श्याम और भेलम के मटमैले पानी का संगम दीख पड़ता है। कृष्णगंगा के परली पार सत्य देख रहा है, पाँच-सात गूजरियाँ क्रीड़ा कर रही हैं। सत्य को उसके मुख स्पष्ट नहीं दीखते; पर फिर भी वह उन्हें अच्छी तरह देख सकता है।

सत्य कपड़े उतार चुका है और पानी में घुस गया है। वह किनारे के पास ही जल में बैठ गया है, उसका सिर-भर पानी के बाहर है। दूसरे श्यामल पानी में शायद वह बिल्कुल ही अदृश्य हो जाय।

गूजरियाँ भी नहाने की तैयारी कर रही हैं। उन्होंने परस्पर हँसी करते-करते कपड़े उतार फेंके हैं; और रेत पर लेटी हुई धूप सेंक रही हैं।

सत्य पानी में बैठा हुआ उन्हें देख रहा है। वह अपना स्नान भूल गया है, किनारे से दूरबीन उठाकर देख रहा है, उसे क्षीण-सा ज्ञान है कि वह अच्छा नहीं कर रहा है, पर साथ ही यह विचार उसे प्रोत्साहन दे रहा है कि वह परलोक से नहीं देखता। और फिर जब वे खुले-आम नहा रही हैं, तो अनेक लोग उन्हें देख रहे होंगे, वह अकेला थोड़े ही है ?

सत्य तू कब तक ऐसे बैठा रहेगा। अपने जीवन की जिन दबी हुई शक्तियों को तू आज उन्मुक्त कर रहा है, वे कहीं तुझे ही न कुचल डालें ...

उँह वह देखो, गूजरियों के दो छोटी-मोटी लड़कियाँ हैं, फितने

तीव्र स्वर से हँस रही हैं। सत्य को जान पड़ा है, या भ्रम होता है कि वह नदी के प्रवाह मर्मर के ऊपर उस तीखे स्वर को सुन सकता है।

वह एक युवती उठ कर चट्टान पर खड़ी हुई है और सूर्य की ओर उन्मुख होकर अङ्गड़ाई ले रही है। मानो कोई वन-सुन्दरी सूर्य को ललकार रही है—तू सुन्दर है या मैं ? उसने कन्धे पर अपना पैरहन रखा हुआ है, जिसके मुकाबले में उसका शरीर बहुत गोरा जान पड़ रहा है।

बहुत देख लिया। वे शक्तियाँ तुझे नहीं छोड़ेंगी। तेरी मानवता पुकार रही है—तेरी दासता बढ़ स्वाभाविक कामनाएँ अत्यधिक नियंत्रण के कारण और अधिक बलवती होकर फूट निकली हैं। तू सँभल—इस अपूर्व उत्तंजना को दबा डाल !

और यह सोचते-सोचते उसने दूरबीन किनारे पर रखी, एक लम्बी सांस ली और फिर गोला लगा गया। जब उसका सिर पानी से बाहर निकला, तब आधी से अधिक नदी पार कर आया था। उसने पानी में उछलकर सांस ली। उसकी आँखों ने तब तक वह चट्टान खोज ली

वह चौकी-उसके ओठ कुछ खुलकर फिर एक भय और विस्मय की चीख को पी गए—उसका मुख क्षण-ही भर में भय, लज्जा, शायद पीड़ा और एक साथ ही कोमल और कठोर अभिमान की छाया दिखा गया। उसी क्षण में उसने हाथ ऊपर उठाये और एड़ियों पर सध गई। अगले क्षण सत्य ने देखा, मानो एक बड़ा-सा काला गरुड़ अपने डैने फैलाए उस चट्टान पर मंडरा रहा है—वह युवती पानी में कूद पड़ी है और बैठ गई है और उसका काला पैरहन पानी पर तैर रहा है। और उसी क्षण में सत्य भँगा हुआ, क्षज्जित; पानी में ही पसीना आ रहा है।

सत्य लड़खड़ाकर गिरा। सैकड़ों मील का व्यवधान पार करता हुआ—मुज़फ्फराबाद से मेरठ.....

सत्य, भारतमाता का सुपुत्र, आवेश में आकर लारी में ही खड़ा हो गया है। पुलिसवाले चौंककर उसकी ओर देखते हैं। वह घोर लज्जा का अनुभव कर रहा है—उसके माथे पर पसीना आगया है।

और जिस चेहरे की कल्पना करने की चेष्टा में उसने इतनी शक्ति लगा दी थी, इतनी शक्ति लगाकर भी असफल रहा था, वह उसके सामने नाच रहा है। एक अकेला नहीं, हजारों। सत्य को देख पड़ने—वाला कुल वायुमण्डल ही सहस्रों वैसे चेहरों से भर गया है—वही बिखरे केश, मिलती भँवें, अनुपम आँखें, भरे ओठ, वही विचित्र मुद्रा, भय, लज्जा, पीड़ा, करुणा, ग्लानि। वह कोमल या कठोर बलिदान या अभिमान।

यह सब उसकी उरोजना की उठान में नहीं, किन्तु तब, जब भारत माता का सुपुत्र आत्म-ग्लानि का पुंज बनकर बैठ गया है।

जिस चीज़ को मैं समझता था कि मैंने अपने आदर्श-जीवन में भुला दिया है, वह अभी तक मेरे भीतर इतने उग्र रूप में विद्यमान है—भारतमाता के सुपुत्र ! देश के उद्धारकर्ता ! छिः छिः !

छिः!

(४)

रिहा तो हर हालत में होना ही था, किन्तु सत्य जिस सुख और गौरव की कल्पना कर रहा था; उसका अणुमात्र भी उसे प्राप्त नहीं हुआ। जब भीड़ की भीड़ उसे लेने आई, जब उसके इन्तमित्र जो तीन वर्ष तक उसकी स्मृति को हृदय में छिपाए बैठे थे उसे बढ़ावा देते हुए खींचकर ले गए और लारी में बिठाकर देहली चलने को हुए—उसके नाम के नारे लगाते हुए—तब सत्य को ऐसा प्रतीत हुआ, वह बच नहीं सकेगा, लज्जा से वहीं धंस जायगा। उसके जी में आया, चिल्लाकर

कहूँ,—मैं अत्यन्त नीच, धृष्टित, पतित हूँ; मुझे धक्के दे-देकर निकालो-नहीं, फिर बापिस जेल भेज दो ! मैं उसी योग्य हूँ । उसे जान पड़ा अगर यह नहीं कहूँगा, तो जेल जाऊँगा । ज्वालामुखी की तरह फट पड़ूँगा ।

पर उसने कहा नहीं । उसके मुँह से बोल नहीं निकला केवल जब किसी ने पूछा—‘आपको अभी से देश की चिन्ता लग गई ।’ और सत्य ने देखा कि पहुँचने वाले की मुद्रा में व्यंग नहीं, श्रद्धा-का-सा भाव है, तब उसने क्रोध की पराकाष्ठा में, उसी को छिपाने के लिए, जैसा भी सूझा अच्छा, बुरा, भद्दा, मज़ाक करना शुरू किया, और फिर ऐसा चला कि बस, रुकने में ही नहीं आया ।

पर जमुना के पुल के पास पहुँचते-पहुँचते वही हाल । सत्य चुप-गुमसुम । लोग बात करते हैं-तो उतार नदारद—मानो सुना ही नहीं ।

पुल पार करते ही सत्य ने कहा, ‘लारी रुकवाओ, उतरूँगा ।’ दोस्तों ने विस्मित होकर कारण पूछा, तो किसी से इधर मिलने जाना है । ग्राम तक, काम नहीं रुक सकता ।

कोई साथ चले ? नहीं, अकेले जायँगे । प्राइवेट काम है ।

लीडर के सौ खून माफ़ । सत्य को उतार कर लारी आगे बढ़ी । सत्य जल्दी-जल्दी बेला रोड पर चलने लगा । न-जाने किस आशा में, उसने इस पर स्वयं कोई विचार नहीं किया था । वह चलता जा रहा था और उसकी आँखें आस-पास किसी परिचित चिन्ह की तलाश में फिरती थीं ।

ये रहे नरसल—और वह रहा भाऊ—वह सामने सरकण्डे का भुरमुट्टा—मफई का कहीं नाम निशान तक नहीं दीख पड़ता, वह तो बिलकुल बैठ गई है । अब तक तो सब गई होगी । और यह—सत्य ठिठक गया ।

यह सामने वही कँटीली भाड़ी है । आस-पास कहीं कोई नहीं दीख पड़ता । दूर पर फूस के छप्पर पड़े हैं, पर उनके पास-पड़ोस में कोई

मानवी आकार नहीं दीखता। क्या करूँ ? उतर कर देखूँ झाड़ी में क्या है ? अगर कुछ होता भी, तो अब कौन छोड़ेगा ? शायद खून के कतरे—

नहीं, कुछ नहीं है। स्वप्न भले ही आज देखे हों, दिन में उसका धुँआ भी नज़र नहीं आता।

सत्य बैठा है। संसार अपनी अभ्यस्त गति में चला जा रहा है, पर सत्य के लिए नहीं। उसके लिए सृष्टि मर चुकी है। अब रह गया है वह और एक वायदा। एक वायदा जो कि पूरा नहीं हुआ। न होगा। न हो सकता है। वह अब वैसा ही है, जैसे कोई प्रेमिका मिलने का वचन देकर घर गई हो और उसका अभिसारी प्रतीक्षा में बैठा रहे। दिन, महीनों बरसों नहीं, अन्तकाल तक प्रतीक्षा में बैठा रहे—दिन ढल गया है, जमुना का गंदला पानी सांध्यभूष में तांबे-सा दीख पड़ता है, और नरसल पंखे; जैसे तांबे को जंग लग गया हो; हवा चलने लगी है, और उसमें पानी के वृद्धिगत होते हुए घर-घर शब्द के साथ ही नरसल और भाऊ की दर्द-भरी सरसराहट मिल गई है; दूर कहीं से पक्षियों के स्वर में न छिप सकने वाली पड़कुलिया की पुकार कह रही है, 'तू ही तू !'—पर इस परिवर्तन में सत्य का संसार अपरिवर्तित खड़ा है—पथर पर बिचे हुए चित्र की तरह जड़ ?

वह जो बुढ़ा चला आ रहा है, सत्य ने उसे नहीं देखा, पर वह सत्य की ओर आ रहा है। उसकी मुद्रा से जान पड़ता है, बात करना चाहता है।

बाबू जी, यहां क्या कर रहे हो ?

सत्य ने चौंककर कहा, 'क्यों ?'

'बाबू जी, यहां मत बैठो; यह जगह अच्छी नहीं है।'

क्यों ?

‘क्या बताएँ बाबू जी, यहां तो कल ही गांव के नाम को बट्टा लग चुका था।’

सत्य जानता था कि यह भ्रम है; पर उसे मालूम हुआ, पानी से एक पुकार उठ रही है—‘हाय मोहे बचाइयो।’ वह संभल कर बैठ गया, और बोला—‘क्या बात हुई?’

‘बात कुछ नहीं खेत के बारे में कुछ झगड़ा हो गया था, उसी से लड़ाई हो गई—’

‘सो कैसे?’

बुड्ढे ने खँखार कर पूछा, ‘बाबू जी, आप तमाखू पीते हैं?’ और जवाब पाकर थोड़ी देर चुप रहकर कहने लगा, ‘‘हमारे गांव में एक ही बड़े किसान हैं, बाकी हम सब लोग तो गरीब लोग हैं। ये आस-पास के सब खेत उनके ही हैं। हमारे तो कहीं एक-आध खेत होगा। जब बाढ़ आई तो हम सब अपने छप्पर यहां सड़क पर ले आये। एक गरीब घर का छप्पर भी बह गया था। वे रात भर भीगते बैठे रहे थे। उनके घर में एक लड़का बेराम था। उसकी माँ रोती थी। बाप तो काम को गया हुआ था। घर में मर्द कोई था नहीं। एक अंगूली बहू थी—उससे यह रोना देखा नहीं गया। वह सास से बोली मैं थोड़े भाऊ और नरसल ले आती हूँ, बच्चे के लिए छपरिया छ़ा लेंगे। वह उठ कर—’

‘तो और किसी ने उन्हें जगह नहीं दी?’

‘और कहाँ से देते! वे सब तो आप भीग रहे थे—छप्परों में जगह कहाँ थी? हाँ तो वह हँसुई लेकर चलदी। पता नहीं, किधर गई। हमसे थोड़ी देर बाद सुना कि उसकी चौधरी के बेटे से रार हो गई है। वह पूछ रहा है कि मेरे खेत से मकई काट रही है? तो यह जवाब देती है कि मैं नरसल काटने आई हूँ। वह गाली देता है कि भाली झूठ बोलती है! तो कहती है कि ज़बान सँभाल कर बात करो। वह और गाली देता है, तो वह माँ बहिन की याद दिला देती है।’

‘पर मकई तो वैसे ही गल गई, काम तो आती नहीं—?’

‘बाबू जी, अपनी चीज़ सड़े तो, गलै तो, अपनी ही है।’

‘पर—’ कहकर सत्य चुप हो गया। बुड्ढा फिर कहने लगा—
‘हां तो, थोड़ी देर में दोनों चुप हो गए—हम सोचते रहे कि क्या हुआ है। तब बहू लौट आई—थोड़े से नरसल काट लाई थी—उसमें दो-चार पौधे शायद मकई के भी थे !’

‘फिर ?’

‘हमने बहू की सास से कहा कि उसे समझा दे, गांव के चौधरी से रार करना अच्छा नहीं होता। बहू कुछ नहीं बोली। घूंघट काढ़कर छपरिया छाने बैठ गई। हमने समझा बात खतम हो गई है।’

‘फिर ?’

‘तब भोर होने वाला था। बरसात बन्द हो चुकी थी। धूप निकल आई, तब हम बाहिर निकल कर बदन सुखाने लगे। पर वे सास-बहू बैठी रहीं—बहू अभी तक अपना काम किए जा रही थी। तभी हमने सुना, सास बड़े ज़ोर से चीख पड़ी ! वह बच्चा एक बार छुटपटा कर मर गया था ... !’

‘हम धीरे-धीरे उसके पास गए कि समझाएँ दिलासा दें। बहू ने काम करना बन्द कर दिया ; सन्न-सी वहीं बैठ रही ! हम भी कुछ कह नहीं पाए थे, अभी चुप ही थे कि चौधरी का बेटा एक लाठी लिए आया और उसे देखकर बोला—‘क्यों री ! तू ही दुराकर लाई थी मकई ?’ और कहते-कहते लाठी से उसकी बनाई हुई अभूरी छपरिया को बिखेर दिया। उसमें एक-आध पौधा मकई का दीख पड़ा, तो लाठी से बहू को ढकेलते हुए बोला—‘अब क्यों नहीं बोल निकलता ?’ और गन्दी गाली दी। तब बहू ने घूंघट हटा दिया और बोली ‘चौधरी, अपना काम करो, गरीबों को सताना अच्छा नहीं !’

‘चौधरी और भी गर्म हुआ। गालियां देने लगा और एक लाठी भी बहू की टांग में जमा दी। बहू हमारी ओर देखकर बोली, ‘तुम लोग देखते नहीं हों?’ पर हम सब ऐसे घबरा गए थे कि हिल-डुल भी नहीं सके, बोले भी नहीं। इतनी देर में उसने एक लाठी और मारी। बहू हटकर बची तो, पर उसके पैर में चोट लगी। तब वह भागी और चौधरी उसके पीछे-पीछे।’

‘फिर?’

‘हम वहीं बैठे रह गए—फिर क्या हुआ; हमने नहीं देखा—’ सत्य को ऐसा हुआ, कहुं, ‘मैंने देखा! मैंने देखा।’ पर वह चुपचाप सुनता रहा।

‘जब हमने फिर देखा, तो चौधरी इसी जगह खड़ा था। और वह वहीं भाड़ी में डूब रही थी। हमने मिलकर उसे निकाला, वह बेहोश थी। उसके कई जगह चोटें थीं, खून बह रहा था।’

‘फिर?’

‘फिर उसे अस्पताल में ले गए वहां पड़ी है। अभी तक होश नहीं आया। बचेगी नहीं।’

बुढ़ा चुप हो गया। थोड़ी देर बाद सत्य ने पूछा—‘और चौधरी?’

‘चौधरी क्या?’ प्रश्न में ऐसा विस्मय था, मानो सत्य का प्रश्न उठ ही नहीं सकता—उसका उत्तर इतना स्वतः सिद्ध है। हां चौधरी क्या! चौधरी कुछ नहीं। वह तो चौधरी है ही।’

बहुत देर मौन रहा। बुढ़े ने देखा, सत्य चुप है, न जाने किस विचार में लीन है। वह निराश सा होकर बृद्धों के प्रति संसार की उपेक्षा का विचार करके चला गया।

सूर्यास्त होगया। अँधेरा हो गया। तारे निकल आये। पक्षियों का शव बन्द होगया। पानी की घर-घराहट और गभीर हो गई। पर सत्य का पत्थर में खिंचा हुआ संसार नहीं पिघला, नहीं पिघला।

एक पत्थर का बुलबुला था, ठोस, अपरिवर्तित, मुर्दा। किन्तु बुलबुला होने के कारण वह जीवन की निरन्तर परिवर्तन-शीलता, विचित्रता, रंगीनी और क्षुद्र नश्वरता का द्योतक बना रहता था। वह चिन्ह था अनुभूति का, प्रेम का, उत्साह का किन्तु उसकी वास्तविकता थी छलना, वेदना, वज्र कठोरता, मानव के जीवन का नंगापन...

वह बुलबुला फूट गया है, इसलिए उसका भेद खुल गया है। सत्य भी देख सकता है कि वह जीवन का सौन्दर्य नहीं, उसके पीछे निहित कठोरता है; वह पत्थर है, जो नहीं पिघलेगा, नहीं पिघलेगा।

(५)

कहानी जीवन की प्रति द्याया है, और जीवन स्वयं एक अधूरी कहानी है, अधूरी कहानियों का संग्रह है, एक शिक्षा है, जो आयु-भर मिलती रहती है और समाप्त नहीं होती। हमारी कहानी का सच्चा अन्त तो यह है। मुज़फ़्फ़राबाद वाली बात भी अधूरी, जमुना किनारे की बात भी अधूरी, जीवन ही अधूरा रह गया है। पर, जिस प्रकार किसी लेखक की मृत्यु के बाद छपी हुई अधूरी कहानियों को पढ़ कर भी उस के जीवन की प्रगति का एक पूरा चित्र खींचा जा सकता है, उसी प्रकार संसार की अपूर्ण विशालता में, विशाल अपूर्णता में भी एक साथ मिलता, एक प्रवाह, एक किसी निश्चित, परिपूर्ण फलन की ओर अग्रसर होती हुई अचूक प्रगति...

सत्य का स्वप्न बिखर गया है। उसकी दबी हुई कामनाएँ और लिप्साएँ दबी ही रह गई हैं। सत्य की बुद्धि ने उन्हें बांधकर कुचल डाला है, फूटने नहीं दिया। पर उन्होंने ने भीतर ही भीतर फैलकर सत्य की मानसिक प्रयोगशाला में न जाने कौन-कौन से अभूतपूर्व रसायन तैयार किए हैं, और वे रसायन न जाने किन-किन शक्तियों से लदे

हैं, सत्य को किधर ढूँढ ले जायेंगे ! उसके कौन-कौन से आदर्श तोड़ेंगे । उसकी मेहनत से संचित की हुई, या दबाई हुई किन-किन गुप्त स्मृतियों को उखाड़ फेंकेंगे, नंगा कर देंगे । उसकी किन-किन सदभिलाषाओं, उच्चतम आकांक्षाओं, उत्सर्ग चेष्टाओं की व्युत्पत्ति पतित से पतित, गार्हित से गार्हित; जघन्यतम धातुओं से सिद्ध कर देंगे । प्रेम जीवन के किस किस कमल का उदभव वासना-सर के किस गँदले कीच से कराएँगे...

और यह सारी विराट् क्रिया मानव के लिए एक श्रृंखला ही रह जायगी, जिसे वह समझ कर भी नहीं समझेगा । वह इसकी Continuity को नहीं समझ पाएगा । जैसे आक्सीजन और हाईड्रोजन को मिलाकर जलाएँ—तो एक धड़ाका होता है और हम देखते हैं, न आक्सीजन है, न हाईड्रोजन । उसे हम विस्फोट कहते हैं । पानी बनने की इस क्रिया में हम उसकी अन्विष्ट Continuity नहीं देखते—हम यही समझते हैं कि दोनों गैसों का जीवन अधूरा रह गया—एक विस्फोट में उलझकर खो गया ।

ऐसा ही विस्फोट सत्य के जीवन में भी हुआ; पर हमारी कहानी का वह अङ्ग नहीं है, क्योंकि हमारी कहानी की सम्पूर्णता विस्फोट के पूर्व के इस अधूरेपन में ही है । इस विस्फोट का इस प्रारम्भ से कोई सम्बन्ध नहीं था, फिर भी जीवन की विशाल असम्बद्धता में वे दोनों एक ही क्रिया की दो अभिन्न कलाएँ थीं ।

इस घटना के दो वर्ष बाद सत्य की मृत्यु हो गई । मृत्यु नहीं हुई, हत्या हुई । संयुक्त प्रान्त में जो किसान-विद्रोह हुआ, उसके प्रपीडित, अज्ञात, नाम से घबराने वाले, बल्कि नाम-हीन अशुओं में से सत्य भी एक था । उसी सिलसिले में एक गांव में 'शान्ति-स्थापना' के समय पुलिस के हाथों गोली लगकर वह मर गया । किसी ने यह भी नहीं जाना कि भारतमाता के उस सुपुत्र का समाधिस्थल कहाँ रहा ।

यह भी अपूर्ण कहानो है । किन्तु इन टूटी-फूटी कड़ियों को जोड़ देने पर जीवन-शृंखला पूरी हो जाती है । यह और बात है कि इन कड़ियों को जोड़ देने की शक्ति मानव में नहीं है—कि इसके लिए हमारे जीवन-संघर्ष की अपेक्षा कहीं अधिक ताव की कहीं अधिक प्रोज्वल भट्टी की आवश्यकता है ।

—:०:—

पगडंडी

[कमलाकान्त वर्मा]

तब मैं ऐसी नहीं थी। लोग समझते हैं, मैं सदा ऐसा ही हूँ- मोटी, चौड़ी, भारी-भरकम; क्षितिज की परिधि को चीर कर, अनन्त को शान्त बनाती, संसार के एक सिरे से लेकर दूसरे सिरे तक लेटी हुई। वह पुराना इतिहास है। कोई क्या जाने !

तब मैं न तो इतनी लम्बी थी, न इतना चौड़ी। न चेहरे पर ईंटों की सुर्खी की ललाई थी, न शरीर पर कंकड़ों के गहने। मेरे दायें बायें वृक्षों की जो ये कतारें देख रहे हो, वे भी नहीं थीं, न फुट-पाथ था न बिजली के खम्भे; अस्पराओं की-सी सजी न ये दुकाने थीं, न अँगूठी के नगीने की तरह ये पार्क। तब मैं एक छोटी-सी पगडंडी थी-दुबली पतली, सुकुमार, नटखट !

कब से मैं हूँ, इसकी तो याद नहीं आती; किन्तु ऐसा जान पड़ता है कि अमराई के इस पार की कोई तरुणी नदी से जल लाने के लिए उस पार गई होगी; जैसे किसी छोटी-सी नगण्य घटना के बाद किसी प्रथा का जन्म हो जाता है, और उसके बाद फिर एक धर्म भी निकल पड़ता है, उसी तरह एक तरुणी के जल भर लाने के बाद गांव की सारी तरुणियाँ घड़े में जल लेकर अटकती, इठलाती एक ही पथ से आती रही होंगी और फिर वहीं से मेरे जीवन की कहानी बह निकली।

मेरे अतीत के आकाश के दो तारे अब भी मेरे जीवन के सूनेपन की कोंधायारी में झलमला रहे हैं। यों तो सारी अमराई, सारा गांव

मेरे परिचितों से भरा था, किन्तु मेरी घनिष्ठता थी, जेबल दो जनों से, एक बटदादा और दूसरा था रामी का कुँआ।

बटदादा अमराई के सभी वृत्तों में बड़े थे और सभी उन्हें श्रद्धा और आदर से बटदादा कहा करते थे। थे तो वे वृद्ध, किन्तु उनका हृदय बालकों से भी सरल और युवकों से भी सरस था। वे अमराई के कुलपति थे। उनमें उपस्थितियों का तेज भी था और गृहस्थों की कोमलता भी। उनकी मघन छाया के नीचे लेट कर बीते हुए युगों की वेदना और आह्लाद से भरी कहानियाँ सुनाना, रिमकिम-रिमकिम वर्धा में उनकी टहनियों में लुककर बैठे हुए पत्तियों की सरस वरसाती का मज़ा लट्ना आज भी याद करके मैं विह्वल हो उठती हूँ।

ठीक इन्हीं से सटा हुआ रामी का कुँआ था—पक्का, ठोस, सज्जल, स्वच्छ, गम्भीर, उदार। साँझ-सवेरे गांव की स्त्रियाँ झन्-झन् करती आतीं और अमराई को अपने कल-कंठ से मुखरित करके कुँए से पानी भरकर मुझे भिगोती हुई, रौंदती हुई, चली जातीं।

मेरे चढ़ती हुई जवानी का आदि भी इन्हीं से होता है, मध्य भी इन्हीं से और अन्त भी इन्हीं से। भूलने की चेष्टा करने पर भी क्या कभी मैं इन्हें भूल सकती हूँ ?

मनुष्य के जीवन का इतिहास प्रायः अपने सगों से नहीं, परायों से बनता है। ऐसा क्यों होता है, समझ में नहीं आता; किन्तु देखा जाता है कि अक्सर कभी की सुनी हुई बोली, किञ्चित्मत्र देखा हुआ स्वरूप, घड़ी-दो-घड़ी का परिचय, जीवन के इतिहास की अमर घटना, स्मृति की अमूल्य निधि बन कर रह जाते हैं और अपने सगों का समस्त समाज, अपने जीवन का सारा दातावरण कमल के पते के चारों ओर के पानी की तरह छल-छल करते रह जाते हैं; उछल-उछल कर आते हैं, बह जाते हैं, टिक नहीं पाते। मैं सोचती हूँ, ऐसा क्यों होता है, पर समझ नहीं पाती।

जेठ के दिन थे। अलस दुपहरी। गरम हवा अमराई के वृत्तों में लुढ़की फिरती थी। बटदादा ऊँघ रहे थे। एक वृत्त में लिपटी हुई दो लताओं में झगड़ा हो रहा था। मैं तन्मय हो उनका झगड़ा सुन रही थी, इतने में ही कुँए ने पूछा—‘पगडंडी, सो गई क्या?’

‘नहीं तो’ मैंने कहा—‘इन लताओं का झगड़ा करना सुन रही हूँ।’

कुँए ने हँसकर पूछा—‘बात क्या है?’

मैंने कहा—‘कुछ नहीं, नाटक का झगड़ा है, दोनों मूर्ख हैं!’

कुँए ने हँसकर कहा—‘संसार में मूर्ख कोई नहीं होता, परिस्थिति सबको मूर्ख बनाती है। इस अमराई में तुम अउली हो, कल एक और। पगडंडी बन जाए तो क्या यह संभव नहीं कि फिर तुम दोनों झगड़ने लग जाओ?’

मैं तिक गई। बोली—‘साधारण बात में भी मेरा जिक्र खींच लाने का तुम्हें क्या अधिकार है?’

कुँए ने पूछा—‘उन्हें मूर्ख कहने का तुम्हें क्या अधिकार है?’

मैंने कहा—‘मैं सौ बार कहूँगी, हजार बार कहूँगी, वे दोनों मूर्ख हैं, तुम भी मूर्ख हो, सब मूर्ख हैं?’

इतने में ही बटदादा भी जगपड़े बोले—‘किसको मूर्ख बना रही है?’

बात रुक गई, कुआँ चुप हो गया। दो दिन तक बोल-चाल बंद रही।

मैंने जान बूझकर उससे झगड़ा क्यों किया, इसे वह समझ नहीं पाया, इसलिए मुझे सन्ताप भी हुआ और ग्लानि भी। स्त्री प्रेम से विह्वल हो जाती है और अपने उच्छ्वसित हृदय के उद्गारों को जब निरुद्ध नहीं कर पाती तब वह झगड़ा करती है। स्त्री का सबसे बड़ा

बल है रोना; उसकी सबसे बड़ी कला है भगड़ा करना। भगड़ा करके लिनकना, रूठकर रोना, फिर दूसरे को रूलाकर मान जाना, नारी-हृदय-का प्रियतम विषय है। पुरुष, चाहे कितना भी पढ़ा लिखा हो, साहित्यिक हो, दार्शनिक हो, तत्त्वज्ञानी हो, यदि वह इतनी सीधी-साधी बात नहीं समझ पाता तो सचमुच मूर्ख है।

यह घटना कुछनई नहीं थी, नित्य की थी। कोई छोटी-सी बात लेकर हम भगड़ पड़ते, आपस में कुछ कह-सुन देते, फिर हफ्तों एक-दूसरे से नहीं बोलते। किन्तु वह बात जिसके लिए मैं सब कुछ करती, सारा भगड़ा खड़ा करती कभी नहीं होती। कुंआँ मुझे कभी नहीं मनाता था। अन्त में हारकर मुझे ही बोलना पड़ता, तब वह बोलने लगता, मानो कुछ हुआ ही नहीं, मैं मन-ही-मन सोचती, यह कैसा विचित्र जीव है कि न तो इसे रूठने से कोई वेदना होती है और न मानने से कोई आह्लाद। स्वयं भी नहीं रूठता, केवल चुप हो रहता है, बोलती हूँ तो फिर बोलने लगता है, जैसे कुछ हुआ ही नहीं। हे ईश्वर ! अपनी रचना की हृदयहीनता की सारी थैली क्या मेरे ही लिए खोल रखी है ?

इस घटना पर मैंने विशेष ध्यान नहीं दिया, किन्तु वह बात रह-रहकर मेरे कानों में गूँज उठती—‘इस अमराई में तुम अफेली हो, कल एक पगडंडी बन जाय तो क्या यह संभव नहीं कि फिर तुम दोनों भी भगड़ने लग जाओ ?’ इसका प्रतिवाद मैंने कैसे किया ? उससे भगड़ा किया, उसे मूर्ख बनाया। कुंआँ समझता है कि मैं स्त्री हूँ और स्त्री-जाति को कमजोरी मेरी भी कमजोरी है। और इसका प्रतिवाद करने के बदले मैं स्वयं उसके तर्क का प्रतिपादन कर देती हूँ, फिर मूर्ख मैं हुई या वह ?

मुझे रह-रहकर अपनी निर्बलता पर क्रोध आ जाता। यदि उसे मेरे लिए कोई सहानुभूति नहीं, मेरे रूठने की कोई चिन्ता नहीं, मुझे

मनाने का आग्रह नहीं, तो फिर मैं क्यों उसके लिए मरने लगी। यदि वह हृदय-हीन है, तो मैं भी हृदय-हीन बन सकती हूँ। यदि वह आत्म-निग्रह कर सकता है, तो मैं भी अपने आप पर संयम रखना सीख सकती हूँ! मैंने कंसम खाई कि फिर उससे रूठूँगी ही नहीं, और यदि रूठूँगी तो फिर बोल्हूँगी नहीं, चाहे जो भी हो, प्रेम के लिए स्त्रीत्व को कलंकित नहीं करूँगी।

एक दिन की बात है। आश्विन का महीना था। बरसात अभी-अभी बीती थी। न कीचड़ थी, न धूल। छोटी हरी घासों और जंगली फूलों के बीच में होकर मैं अमराई के इस पार से उस पार तक लेटी थी। इस सघन हरियाली के बीच में मुझे देखकर जान पड़ता मानो किसी कुमारी कन्या का सीमन्त हो। शरद मेरे अंग-अंग में प्रतिबिम्बित हो रहा था। मैं कुछ सोच रही थी, सहसा कुंए ने कहा—‘पगड़ंडी, सुनती हो?’

मैंने अन्यमनस्क-सी होकर कहा—‘कहो।’

उसने कहा—‘तुम दिनोंदिन मोटी होती जा रही हो।’

मैं कुछ नहीं बोली।

कुछ ठहरकर वह फिर बोला—‘तुम पहले जब दुबली थीं, अच्छी लगती थीं।’

मैंने कहा—‘अगर मैं मोटी हो गई हूँ, केवल तुम्हें अच्छी लगने के लिए तो मैं दुबली होने की नहीं।’

कुंए ने कहा—‘यह तो मैंने कहा नहीं कि दुबली होकर तुम मुझे अच्छी लगोगी।’

मैंने पूछा—‘तब तुमने कहा क्या?’

‘उसने कहा—‘कवियों का कहना है कि दुबलापन स्त्रियों के सौन्दर्य को बढ़ा देता है। मोटी होने से तुम कवियों की सौन्दर्य की परिभाषा से दूर हट जाओगी।’

मैंने खीझकर पूछा—‘तुम तो अपने को कवि नहीं समझते न ?’

उसने कहा—‘बिलकुल नहीं ।’

मैंने पूछा—‘फिर मोटी हो जाने पर मैं कवियों को अच्छी लगूँगी या बुरी, इससे तुम्हें मतलब ?’

उसने शान्त भाव से कहा—‘कुछ भी नहीं, फलतः यही कि मैं उस परिभाषा को जानता हूँ और तुम्हें भी बतला देना अपना कार्य समझता हूँ ।’

मैंने गम्भीर होकर कहा—‘धन्यवाद ।’

स्त्री, यदि वह सचमुच स्त्री है, तो सब कुछ सह सकती है, पर अपने रूप का तिरस्कार नहीं सह सकती । स्त्री चाहे घोर कुरूप हो फिर पुरुष को उसे कुरूपा कहने का कोई नैतिक अधिकार नहीं । स्त्री का स्त्रीत्व ही संसार का सबसे महान् सौन्दर्य है और उसके प्रति असुन्दरता का संकेत करना भी उसके स्त्रीत्व को अपमानित करना है । स्त्री के स्वरूप का उपहास करना वैसा ही है जैसा पुरुष को कायर कहना । मैं समझ गई कि कुआँ मुझ पर मानिक आघात कर रहा है, परिहास नहीं, उपहास करना चाहता है । मैंने मन-ही-मन प्रतिज्ञा की कि चाहे अन्त जो भी हो, मैं भी आज से युद्ध प्रारम्भ करूँगी ।

उसी दिन रात को चाँदनी खिली थी । रजनीगंधा के सौरभ से अमराई मस्त होकर झूम रही थी । बटदादा पत्नियों को सुलाकर अपने भी सोने का उपक्रम कर रहे थे । बोलें—‘सो गइ बेटी ?’

मैंने कहा—‘नहीं दादा, ऐसी चाँदनी क्या सदा रहती है ? मेरे तो जी में आता है कि जीवन-भर ऐसे ही लेंटे लेंटे चाँद को देखती रहूँ ।’

इतने ही मैं कुआँ बोला—‘दादा, अमराई में ब्याह के गीत अभी से गाने शुरू करवा दो ।’

दादा ने पूछा—“कैसा व्याह ?”

उमने कहा—देखते नहीं, प्रेम का पहला चरण प्रारम्भ हो गया है, दूसरे चरण में कवितार्ण बनैगी, तीसरे चरण में पागलपन का अभिनय होगा। चौथे चरण में सगाई हो जायगी।”

मुझे मन-ही-मन गुदगुदी-सी जान पड़ने लगी। सोचा आज इसे खिभाऊँगी। मैंने हँस कर कहा—“दादा, देवो अपने-अपने भाग्य की बात है। ईश्वर ने तुम्हें इतना ऊँचा बनाया है। तुम अपनी अमंख्य अञ्जलियों से सूर्य और चन्द्रमा की किरणों का अंश स्वपान करते हो और किसी एकान्त से आती हुई वायु में अनन्त स्नान करते। विस्तृताकाश में सर उठाकर प्रकृति की अनन्त विभूतियों का अनुशीलन करते हो। नक्षत्रों से भरी हुई रात में शत-शत पक्षियों को गोद में लिए हुए तुम चन्द्रलोक की कहानी सुना करते हो, उषा और गोधूलि नित्य तुम्हें स्नेह से चूम लिया करते हैं, प्रकृति का अनन्त भण्डार तुम्हारे लिए उन्मुक्त है। मैं तुम्हारे जैसी ऊँची तो नहीं हूँ, फिर भी दूर तक फैली हूँ। वसुन्धरा अपनी सुषमा मेरे सामने बिखेर देती है, आकाश सूर्य और चन्द्रमा की किरणों का जाल मेरे ऊपर फैला देता है। बसन्त की मादकता, सावन की मजल हरयाली और शरद की स्वच्छ सुषमा मेरे जीवन में स्फूर्ति प्रदान करती हैं। मैं केवल जीती ही नहीं, जीवन का उपयोग भी करती हूँ। किन्तु मुझे दुःख उन लोगों को देखकर होता है, जिन्हें न तो सूर्य का प्रकाश मिलता है, न चन्द्रमा की किरणें, अन्धकार ही जिनके जीवन की भित्ति है और सूनापन ही जिनकी एक कहानी। वे आकाश को उतना ही बड़ा समझते हैं, जितना उनके भीतर समाता है, वसुन्धरा को उतनी ही दूर तक समझते हैं, जितना वे देख सकते हैं। दादा ! उनका अस्तित्व कैसा दयनीय है, तुमने कभी सोचा है ?”

दादा कुछ नहीं बोले, शायद सो गये थे। लेकिन कुंआँ बोला—“सुन रहे हो, दादा ! पगडंडी कितना सच कह रही है ? ऐसे लोगों से

अधिक दयनीय जीवन किसका होगा ? कुछ दिन पहले मैं भी यही सोच करता था, किन्तु मुझे जान पड़ा कि संसार में और भी अधिक दयनीय जीवन हो सकता है। ईश्वर ने जिसे सूर्य और चन्द्रमा के आलोक से वञ्चित रखा, आकाश का विस्तार और वसुन्धरा का वैभव जिसे देखने नहीं दिया, उस पर दया करके कम-से-कम उसे एक ऐसी चीज़ दे दी, जिससे वह संसार का उपकार कर सकता है, जिसे वह अपना कह सकता है, जिसके द्वारा वह संसार का किसी-न-किसी रूप में लक्ष्य बन सकता है। किन्तु उससे अधिक दयनीय तो वे हैं जिनके सामने सृष्टि का सारा वैभव बिखरा पड़ा है, किन्तु जिनके पास अपना कहने को कुछ भी नहीं। रेखागणित की रेखा की तरह उनका अस्तित्व तो है, किन्तु उनकी मुटाई, लम्बाई, चौड़ाई सब कुछ काल्पनिक है। उनका अस्तित्व किसी दूसरे के अस्तित्व में अन्तर्निहित है ! वे सभी के साधन हैं किन्तु लक्ष्य किसी के भी नहीं। ऐसे लोग भी दुनिया में हैं। दादा क्या उन पर तुम्हें दया नहीं आती ?

दादा बिलकुल सो गये थे। मैंने तैश में आकर कहा—‘रामी के कुंआँ यदि तुम समझते हो कि तुम संसार के लक्ष्य हो और मैं केवल साधन-मात्र, तो यह तुम्हारी भूल है। संसार में जो कुछ है, साधन ही है, लक्ष्य कुछ भी नहीं। लक्ष्य शब्द मनुष्य की उलझी हुई कल्पना का फल है ! लक्ष्य एक भावना-मात्र है, स्थूल और प्रत्यक्ष रूप में जिस किसी का अस्तित्व है, वह साधन ही है, चाहे जिस रूप में हो।’

कुंएँ ने गंभीरस्वर में कहा—‘तुम ने मेरा पूरा नाम लेकर पुकारा इसके लिए धन्यवाद। मैं उत्तर में केवल दो बातें कहूँगा। पहली तो यह कि हमारा और तुम्हारा कोई अपना भगड़ा नहीं है, मैं समझता हूँ, व्यक्तिगत रूप से न तुमने मुझे कुछ कहा है, न मैं तुम्हें कुछ कह रहा हूँ। दूसरी बात यह है कि जैसा तुम कह रही हो, लक्ष्य और साधन में

प्राकारिक अन्तर न होते हुए भी पारिमाणिक अन्तर है। संसार में लक्ष्य नाम की कोई चीज़ नहीं, ठीक है; यहाँ जो कुछ है किसी न किसी रूप में साधन ही है, यह भी ठीक है। फिर भी मानना पड़ेगा कि साधनों में कुछ साधन ऐसी अवस्था में हैं, जिन्हें साधन के अतिरिक्त दूसरा कुछ कहा ही नहीं जा सकता, और कुछ साधन ऐसी अवस्था में पहुँच गए हैं, जिन्हें संसार अपनी सुविधा के लिए लक्ष्य ही कहना अधिक उपयुक्त समझता है। इसका प्रत्यक्ष स्थूल प्रमाण यह है कि कुछ लोगों के यहाँ संसार आता है, हाथ फैलाकर कुछ मांगता है और फिर चला जाता है, संसार की स्थूल व्यावहारिक भाषा में वे तो हुए लक्ष्य, और कुछ लोग हैं ऐसे जिनके यहाँ संसार आता है, किन्तु इसलिए नहीं कि वह उनसे कुछ लेना चाहता है, बल्कि इसलिए कि उनके द्वारा वह अपने लक्ष्य के पास पहुँच सकता है, तुम्हारी सूक्ष्म दार्शनिक भाषा में ऐसे लोग हुए साधन। समझीं ?

में कुछ कहना ही चाहती थी कि उसने रोक दिया, कहा—‘देखो, तुम्हारी चाँदनी डूब गई, अब तो सो सकती हो या नहीं ?’

कुछ दिन और बीते। मेरे प्रेम की आग पर आत्माभिमान की राख पड़ने लगी। कुआँ संसार का लक्ष्य है, मैं केवल एक साधन हूँ। फिर मेरा उसका प्रेम कैसे हो सकता है ! मैं कभी-कभी सोचती, प्रेम में प्रतियोगिता कैसी ? मान लो, वह संसार में सब कुछ है और मैं कुछ भी नहीं, फिर भी क्या यह यथेष्ट कारण है कि यदि मैं उससे प्रेम करूँ तो वह उसका प्रतिदान न दे ? कुआँ अपने सांसारिक महत्व के गर्व में चूर है। वह समझता है कि उसके सामने मैं इतनी तुच्छ हूँ कि मुझसे प्रेम करना तो दूर रहा, भर-मुँह बोलना भी पाप है। वह मुझसे घृणा करता है, मेरा उपहास करता है, बात-बात में मुझे नीचा दिखाना चाहता है। बर्बर पुरुष जाति !

में दिनों-दिन उससे दूर हटने की चेष्टा करने लगी। उसके सामीप्य में मेरा दम घुटने लगा। वह महत्वशाली है, संसार उसके सामने

भिखारी बनकर आता है और मैं? मेरा तो कोई अस्तित्व ही नहीं, किसी लक्ष्य तक पहुँचने का एक साधन-मात्र हूँ। मेरी उसकी क्या तुलना

मांस-सबेरे गांव की स्त्रियाँ आतीं और पानी भर ले जातीं। अलस दुपहरी में पथिक अमराई में विश्राम करने के लिए आते और कुण्ड के पानी में सत्तु-सान-का खाते, फिर थोड़ी देर वृत्तों के नीचे लेटकर अपनी राह चले जाते। गांव के छोटे-छोटे लड़के अमराई में आकर कल लोड़ते, कुण्ड से पानी खींचते और फिर पक्ष खाकर मुँह हाथ धोकर चले जाते। जहाँ देखो उसी की चर्चा, उसी की बात। मैं अपनी अशक्तता पर मन-ही-मन कुटकर उल्टी-सी जाती। मुझे जान पड़ता, मानो संसार मेरा उपद्राम कर रहा है, आकाश मेरा विररकार कर रहा है, पृथ्वी मेरी अवहेलना कर रही है। मेरा अस्तित्व रेखागणित की रेखाओं और बिंदुओं का अस्तित्व है। मैं सब की हूँ, पर मेरा कोई नहीं। मैं भी अपनी नहीं। केवल संसार को किसी लक्ष्य तक पहुँचाने के लिए साधन-सी बनकर जी रही हूँ। मुझे यहाँ से हटना ही पड़ेगा। चाहे जहाँ भी जाऊँ, जाऊँगी ज़रूर। हृदय की शान्ति की खोज में वन-वन भटकूँगी, वसुन्धरा के एक छोर से लेकर दूसरे छोर तक के अतन्त विस्तार को छान डालूँगी, यदि कहीं शान्ति नहीं मिली तो किसी मरुभूमि की विशाल सैकत-राशि में जाकर विलीन हो जाऊँगी, या किसी विजन पर्वत-माला की अंधेरी गुफा में जाकर सो रहूँगी, फिर भी यहाँ न रहूँगी। वहाँ से मैं हटने का उपक्रम करने लगी।

आधी रात थी। चाँदनी और अन्धकार अमराई के वृत्तों के नीचे गाढालिगन में बंधे सो रहे थे। मुझे उस रात की सारी बातें अब भी याद हैं, मानो अभी कल ही की हों। मैं अपने अतीत जीवन की कितनी ही छोटी-छोटी स्मृतियाँ सहेज रही थी। इनमें मैं कुण्ड ने पुकारा—‘पगडंडी!’

निशीथ के सूनेपन में उसकी आवाज़ गूँज उठी ! मैं चौंक पड़ी ।
इतने दिनों के बाद आज कुश्रों मुझे पुकार रहा है, मेरा कातूहल उमड़ने
लगा ।

मैंने कहा—‘क्या है ?’

कुश्रों थोड़ी देर चुप रहा, फिर पुकारा—‘पगडंडी !’

शायद उसने मेरा बोलना सुना ही नहीं । मुझे आश्चर्य होने लगा,
‘क्या आज कोई अभिनय होगा ?’ मैंने संयत स्वर में कहा—‘बया है ?’

कुश्रों बोला—‘मैं तुमसे एक बात पूछना चाहता हूँ ।’ ‘पगडंडी’

मैंने कहा—‘पूछो ।’

वह बोला—‘शायद तुम यहां से कहीं जा रही हो ?’

उस समय बिजली भी गिर पड़ी तो मुझे उतना आश्चर्य न
होता । इसे कैसे मालूम हुआ ? यदि मान लें कि किसी तरह मालूम
भी हो गया, तो फिर इसे बया मालूम ? मैं क्षण-भर में ही न जाने
क्या-क्या सोच गई, कितने ही भावों से मेरा हृदय उथल-पुथल हो
उठा, किन्तु मैंने सारा आवेग रोक कर उदासीन स्वर में कहा—‘हाँ !’

कुश्रों थोड़ी देर चुप रहा, फिर बोला—‘तुम इस कमराई से जा
रही हो, अच्छा है । मैं बहुत प्रसन्न हूँ ।’

मैं कुछ उत्तर देने जा रही थी, तब तक उसने रोक दिया—‘ठहरो’
मेरी बात सुन लो । जब तुम पहले-पहल यहाँ आई थीं, तब जितना
प्रसन्न मैं हुआ था, उतना और कोई नहीं, आज जब तुम यहाँ से जा
रही हो, तब भी जितनी खुशी मुझे हो रही है, उतनी और किसी को
नहीं । तुम इसका कारण जानती हो ?’

मैं कुछ नहीं बोली ।

वह कहने लगा—‘मैं तुम्हें किसी दिन कहनेवाला ही था ! तुमने स्वयं जाने का निश्चय कर लिया । यह और भी अच्छा हुआ ।’

मैंने अनन्यमनस्क-सी कहा—‘संसार में जो कुछ होता है, अच्छा ही होता है ।’

कुआं बोला—‘पगडंडी, तुम यहाँ से जा रही हो, सम्भावना यही है कि फिर तुम कभी लौटकर नहीं आओगी । तुम्हारे जाने के पहले मैं तुम से अपने हृदय की बात, एक चिरसंचित बात कहूँगा, सुनोगी तो ?’

मेरे हृदय में उस समय दो धाराएँ बह रही थीं; एक संशय की, दूसरी विस्मय की । फिर भी इतना है कि संशय से अधिक मुझे विस्मय ही हुआ । मैंने सारा कौतूहल दबाकर कहा—‘कहते जाओ ।’

कुआं कहने लगा—‘मुझे अधिक कुछ नहीं कहना है । केवल दो बातें हैं । मैंने तुम से कभी नहीं कहा था । इसका कारण यह है कि अब तक कहने का समय नहीं आया था । तुम अब जा रही हो, जान पड़ता है वह समय आगया, इसलिए कह रहा हूँ ।’

थोड़ा रुककर, फिर अपने स्वाभाविक दार्शनिक ढंग से उसने कहना शुरू किया—

‘पहली बात यह है कि तुम्हारे प्रति अगाध प्रेम होते हुए भी आज तक मैंने ज़ाहिर क्यों नहीं होने दिया ? मुझे याद है, जिस दिन आकाश के ज्योतिषपथ को तरह तुम पहलै-पहल इस अमराई में आकर बिछ गईं, उस दिन मैंने बट्टादा से पूछा—‘दादा, यह कौन है ?’ दादा ने विनोद से कहा—‘तुम्हारी बहू !’ मैं झेंप गया । तब से लेकर आज तक एक युग बीत गया ! कितने बसंत आये, कितनी बरसातें आईं, इस अमराई की सघन छाया में हम दोनों ने कितनी कहानियाँ सुनीं, कितने गीत सुनकर

फिर भूल गये और कितनी बार हम आपस में लड़े-झगड़े हैं। इम अतीत जीवन की छोटी-से-छोटी घटना भी मेरे स्मृति-पट पर अमर-रेखा बनकर खिच गई है और उन टेढ़ी-मेढ़ी रेखाओं को जोड़कर जो अक्षर बनते हैं उसका एक-मात्र अर्थ यही निकलता है कि इस अमराई में छोटी-पतली-सी जो एक पगडण्डी है, उस पगडण्डी के सूने उपेक्षित जीवन हैं जो निष्कर्ष है वह किसी एक युग या एक देश का नहीं, विश्व-भर का अनन्तकाल के लिए आलोक-स्तम्भ बन सकता है। वह न रहे, किन्तु उसकी कथा युग-युग तक कल्पना-लोक के विस्तृताकाश में श्राव्य का आदर्श बन आकाश दीप-सी झिलमिलाती रहेगी।

किन्तु इतना होते हुए भी आज तक मैंने तुम से कभी कुछ कहा क्यों नहीं ?

इतना ही नहीं, मैंने अब तक तुम्हारे प्रति केवल उदासीनता और कठोरता के भाव ही प्रकाशित किये। नीरस उपेक्षा, आलोचनात्मक विनोद, इसके अतिरिक्त मुझे याद नहीं, मैं और भी तुम्हें कुछ दे सका हूँ या नहीं ! किन्तु क्यों ? केवल एक ही कारण था।

पगडण्डी, मैं तुम्हें जानता था, तुम्हारे हृदय को अच्छी तरह पहचानता था। मैं तुम्हारे जीवन का दार्शनिक अध्ययन कर रहा था। मैं जानता था, संसार के कल्याण के किसी अभिप्राय को लेकर तुम्हारे जीवन का निर्माण हुआ है। मैं जानता था, किस सत्य को लेकर विश्व की रचनात्मक शक्ति ने तुम्हें स्वर्ग से लाकर इस अमराई की घासों और पत्तों की सेज पर सुला दिया है। मैं यह भी जानता था, कि तुम्हारे अवतरण का जो अन्तर्निहित अभिप्राय है, वह किस पथ पर चलकर तुम अधिक-से-अधिक प्राप्त कर सकती हो।

जिस महान् उद्देश्य को लेकर तुम जन्मी हो, उसे मैं जानता हूँ, इच्छा रहते हुए भी मैं तुम्हारी कोई सहायता नहीं कर सकता। किन्तु हाँ,

एक बात कर सकता हूँ। गायक अपनी तान को आरोह-अवरोह के बीच में नचाता हुआ ले जाकर सम पर बिठा देता है। सुनने वाले उसे सहायता नहीं दे सकते, फिर भी अन्त में सम पर एक बार सर हिला देते हैं। तान लौटकर घर आ गई, सबका सर हिल गया। पगडण्डी, अपने जीवन के उच्चादर्श को तुम्हें अबले ही निभाना पड़ेगा, मैं केवल इतना ही कर सकूँगा कि जिस दिन तुम्हारे जीवन की तान लौटकर घर आ जायगी, उस दिन उस संगीत में अपने को बहाकर सर हिला दूँगा। तुम्हारे जीवन संगीत के सम पर अपने को निछावर कर दूँगा, बस।

प्रेम से स्वर्ग मिलता है, किन्तु उससे भी ऊँचा, उससे भी पवित्र एक स्थान है। उसका वही पथ है जिस पर तुम जा रही हो, सेवा। प्रेम सभी कर सकते हैं, किन्तु सेवा सभी नहीं कर सकते। प्रेम करना संसार का स्वभाव है, किन्तु सेवा एक साधना है। प्रेम हृदय की सारी कोमल भावनाओं का आकुञ्चन है, सेवा उनका प्रसार। प्रेम में स्वयं लक्ष्य बनकर अपना एक लक्ष्य बनाना पड़ता है, सेवा में अपने को संसार का साधन बनाकर संसार को अपनी साधनाओं की तपोभूमि बना देना पड़ता है। प्रेम यज्ञ है और सेवा तपस्या। प्रेम से प्रेमिक मिलता है और सेवा से ईश्वर।

जन्म से लेकर आज तक तुम सेवा के पथ पर ही रही हो और अब भी उत्तरोत्तर उसी पर आगे बढ़ी जा रही हो। तुम्हारे मार्ग में जो सबसे बड़ा विघ्न बनकर खड़ा हो सकता वह है प्रेम! प्रेम मनुष्यत्व है और सेवा। देवत्व। तुम्हारी आत्मा स्वर्गिक होते हुए भी तुम्हारा शरीर भौतिक है। आत्मा और शरीर का द्वन्द्व संसार की अमर कहानी है। बसंत जब अपना मधुकल शपृथ्वी पर उड़ेल देता है, वर्षा जब बन-वन में हरियाली बिखेर देती है, शरद के शुभ्राभ्र-खंड जब आकाश में तैरने लगते हैं, तब आत्मा की साधनाओं में शरीर छोटे-छोटे सपने छोड़ देता है; सामवेद की मधुर गंभीर ध्वनि में मेघ-मलार की मस्तीलानी तानें भीन जाती हैं, सोमरस में

साद्व्य की बूँदें चू पड़ी हैं, कैलाश बरसत आ जाता है, यह बहुत पुराना रथा है। युग-युगान्तर से यही होता आया है और यही होता रहेगा। फिर जो सभी इने भूल जाते हैं। आँखें भूष जाती हैं, नरस्या के सुप्र प्रव्यूष में अनुराग की अरुण उषा छिटक पड़ती है, साधन का बर्फ चलने लगता है, लगन की आग मँझाने लगती है, हृदय की एकान्तता में किसी की छाया घुस पड़ती है, जागृति में अँगड़ाई भर जाती है, स्वप्नों में मादकता भोन जाती है और—और जब आँखें खुली है तब कहीं कुछ नहीं रहता। फिर से बड़े कठाली शुरु होती है—बड़े यात्रा होती है, नया प्रस्थान होता है। इसी तरह यह संसार चलता है।

आत्मा के ऊपर शरीर का सबसे बड़ा प्रभाव है संसार। जब संसार में सभी किसी न किसी से प्रेम करते हैं, पता को कोई-न-कोई एक अपना है, जब किसी से प्रेम करना, किसी के प्रेम का पात्र बनना प्राणि मात्र का अधिकार है, तब फिर में—उल में ही—ज्यों इससे बचिवा रहें? यह जीव की अमर समस्या है, सार्वत्रिक प्रश्न है।

किन्तु पक्ष क्या है, जहाँ यह समझने की बहुत कम चेष्टा करते हैं। जिनके पैर हैं वे ज़मीन पर चलते हैं, किन्तु जिन्हें पंख मिले हैं यदि वे भी ज़मीन पर ही चलें तो यह अपनी शक्तियों का दुरुपयोग है। जिन्हें ईश्वर ने आकाश में उड़ने के लिए बनाया है, उनके लिए पृथ्वी पर चलना अपने महत्व की उपेक्षा करना है, अपने आपको भूलना है—

प्रेम करने की योग्यता सब में है; किन्तु सेवा करने की शक्ति किसी-न-किसी को ही मिली है। सेवा करने की योग्यता रखना दण्ड नहीं, ईश्वर का आशीर्वाद है। जिसे ईश्वर ने संसार में आना बनाया है, धन-वैभव नहीं दिया है, सुख में प्रसन्न होने वाला और दुःख में गले लगा कर रोने वाला साथी नहीं दिया है, संसार के शब्दों में जिसे उससे दूर बना दिया है, उसने जीवन्त में उसने एक महान् इतिहास भर

दिया है, शक्ति का एक अमर स्रोत, बेचैनी की तड़फड़ाती हुई आँधी-उसके अन्तर में सँजोकर रख दी है। हो सकता है वह इसे न समझे, शायद संसार भी इसे न समझे; फिर भी वह नहीं है, ऐसी बात नहीं; वह है, आवश्यकता है केवल उसे समझने की।

पगडण्डी, तुम ईश्वर की उन्हीं रचनाओं में से एक हो। तुम्हारा निर्माण इसलिये नहीं हुआ है। कि तुम एक की होकर रहो, एक के लिए जिओ और एक के लिए मरो। नहीं, तुम पृथ्वी पर एक बहुत बड़ा उद्देश्य लेकर आई हो। जेठ की धधकती हुई लूमें, भादों की अजस्र वर्षा में और शिशिर के तुषार-पात में इसी तरह लेटी रह कर तुम्हें असंख्य मनुष्यों को घर से बाहर और बाहर से घर पहुँचाना पड़ेगा। सभ्यता के विस्तार के लिए, जीवन के सौख्य के लिए, संसार के कल्याण के लिए तुम्हें बड़ा-से-बड़ा त्याग करना पड़ेगा। तुम्हारा कोई नहीं है, इसलिए कि सभी तुम्हारे हैं; तुम किसी की नहीं हो, इसलिए कि तुम सभी की हो। तुम अपने जीवन का उपभोग नहीं करती हो, तुम विश्व की अक्षय विभूति हो।

आज के पहलू में तुमसे कभी कुछ नहीं कहा था, कारण यह था—पगडण्डी, मेरी स्पष्टवादिता को चूमा करना, कि तुम्हारी आत्मा सोई हुई थी, केवल शरीर जगा था। तुम नहीं समझती थीं कि तुम कौन हो, किस लिए यहाँ आई हो, तुम संसार के पुराने पथ पर चलना चाहती थीं आज, चाहे जिस कारण से हो, तुम्हें अपने वर्तमान जीवन से असन्तोष हो गया है, तुम्हें अपने से घृणा हो आई है। आज तुम अनन्त में कूदने जा रही हो, संसार में कुछ करने जा रही हो, तुम्हारी आत्मा जाग उठी है। इन बातों को कहने का मुझे आज ही अवसर मिला है।

पगडण्डी, तुम ऐसा न समझना कि मैं तुमसे स्नेह नहीं करता, उससे भी अधिक मैं तुम्हारी पूजा करता हूँ। फिर भी अपने व्यक्तित्व

को तुम्हारे पथ में खड़ा करके मैं तुम्हारी आत्मा की प्रगति रोकना नहीं चाहता। मैं तुम्हारी चेतना में अपनी छाया डालकर उसे मलिन नहीं करना चाहता। तुम्हारी संगीत-लहरी में अपवादी स्वर बनकर उसे बेसुरा बनाना नहीं चाहता। मैं बड़े उत्साह से तुम्हें यहाँ से विदा करता हूँ। जाओ—संसार में जहाँ तुम्हारा अधिक उपयोग हो सके, वहाँ जाओ और अपने जीवन को सार्थक बनाओ—यही मेरी कामना है, यही मेरा सन्देश है, यही मेरा 'क्षमा करना' आशीर्वाद है !

केवल एक बात और कहनी है। मेरी हृदयहीनता को भूल जाना हो सके तो क्षमा कर देना। मेरा भी हृदय है, उसमें भी थोड़ा रस है, पर मैंने जान-बूझकर सुखा दिया, उसे आँखों में नहीं आने दिया, ओठों पर से पोंछ डाला। तुम्हारे कर्तव्य-पथ को मैं अपने आँसुओं से गीला नहीं बनाना चाहता—पगडंडी, मेरी कथा समझने की कोशिश करना, यदि न समझ पाओ तो तो फिर सब कुछ भूल जाना।

संसार तुम्हारी राह देख रहा है अनन्त तुम्हारी प्रतीक्षा कर रहा है। जाओ अपना कर्तव्य पालन करो। संसार तुम्हें कुचले को तड़पना नहीं, भूल जाय तो सिसकना नहीं ! भूले हुए पथिकों को घर पहुँचा देना जो घर छोड़ कर विदेश जाना चाहते हों उनकी सहायता करना जब तक जीना सुख रहना, कभी किसी के लिए रोना नहीं और—एक बात और—यदि तुम्हारे हृदय में कभी प्रेम की भावना आ जाए तो कोशिश करके, अपने अस्तित्व का सारा बल लगाकर, उसे निकाल डालना। यदि न निकाल सको तो फिर वहाँ से कहीं दूर—बहुत दूर—चली जाना।

पगडंडी ! विदा ! तुम अपने ज्योतिर्मय भविष्य में अपने धुँधले अतीत को डुबो देना। सब कुछ भूल जाना—बटदादा और रामी के कुएँ को भी भूल जाना। केवल यही याद रखना कि तुम कौन हो और तुम्हारा कर्तव्य क्या है—बस जाओ विदा ! ईश्वर तुम्हें बल दे।

कुर्याँ चुप हो गया। आधी रात को स्वप्निल नीरवता में जान पड़ता था उसका स्वर अब भी गूँज रहा हो, शब्द अन्तरिक्ष में अब भी घुम-डते फिरते हों। मैं कुछ बोल नहीं सकी, सोच भी नहीं सकी। लन्द्रा-भी छा गई, काठ-सा माश गया। उससे अन्तिम शब्द अधरात्रि के शून्य अन्धकार में बिजली के अक्षरों में मानो चारों ओर लिखे हुए-से उग रहे थे—‘बस जाओ, विदा, ईश्वर तुम्हें बल दे !’

ठीक-ठीक याद नहीं आता; कितने दिन हुए, फिर भी एक युग-सा बीत गया। मेरी आँखों के सामने वह स्वरूप आज भी रह-रह कर खड़ा उठता है, कानों में वे शब्द अब भी रह रहकर गूँज उठते हैं।

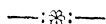
अब मैं राजधानी का राजमार्ग हूँ। दोनों ओर सहेलियों की तरह दो फुट-पाथ हैं, धूप और वर्षा से बचाने के लिए दोनों ओर वृक्षों की कतारें हैं, रोशनी के लिए बिजली के खम्भे हैं, और न जाने विभव-विलास की कितनी चीजें हैं। नित्य मेरा शङ्कार होता है, मेरी देख-रेख में हजारों रुपये खर्च किये जाते हैं। राज-महिर्षी की तरह मेरा सत्कार होता है, जहाँ तक दृष्टि जाती है—बस मैं ही मैं हूँ।

उत्तरदायित्व भी कम नहीं है। मैं शहर की धमनी हूँ इसका रक्त-प्रवाह मुझी से होकर चारों ओर दौड़ता है। मैं सम्यता का स्तम्भ हूँ, राज्य-सत्ता का प्राण हूँ। इतनी भीड़ रहती है कि सोचने की फुर्सत भी नहीं मिलती। जन-समुद्र की अनन्त लहरें मुझे कुचलती हुई एक ओर से दूसरी ओर निकल जाती हैं, मैं उफ तक नहीं करती। इतनी भीड़ में मुझे अपना कहने वाला एक भी नहीं, एक क्षण के लिए भी मेरा होने वाला कोई नहीं। मेरे जलते हुए निविश्राम जीवन पर सहानुभूति की दो बूँद छिड़क दे, ऐसा कोई नहीं। फिर भी मैं व्यथित नहीं होती, खुश रहने की कोशिश करती हूँ, वेदना के शोलों पर मुस्कराहट की राख दिखाएँगी रहती हूँ, ओठों में हृदय को छिपाये

संभली हूँ । जहाँ तक होता है, उसने जो कुछ कहा था सब करती हूँ ।
जबल एक ही बात नहीं होती, उसे भूल नहीं पाती !

अमराई की छाया में घाय और पत्तों पर वह जीवन, पक्षियों के
गाने, लताओं का झगड़ा, बटदादा की कहानियाँ, और... और क्या
कहूँ ? कितनी बातें हैं जो भुलाई नहीं जा सकतीं ! मेरे जीवन-संगीत की
तान लौट कर सम पर आती है, आकर फिर लौट जाती है, पर किसी
का मन नहीं हिलता !

यह पुराना इतिहास है । कोई क्या जाने ! एक समय था जब मैं
मुसी नहीं था !



विक्टोरिया क्रस

हमारे जीवन में कभी-कभी ऐसी घटनाएँ हो जाती हैं, जिनकी हम कल्पना तक नहीं कर सकते। पता नहीं कहाँ तक मनुष्य स्वयं अपने कर्मों का उत्तरदायी है—यदि कहीं एक नियम है, तो वहीं पर उस नियम का इतना स्पष्ट और पक्का अपवाद भी है कि नियम का अस्तित्व ही नहीं रह जाता। फिर जिसे हम विधि का विधान कहेंगे उसका कोई नियम भी तो नहीं है; उसके जितने नियम हमारे सामने हैं; वे सब हमारी कल्पना द्वारा निर्मित हैं। हमारे जीवन में न जाने कितनी शक्तियाँ काम करती रहती हैं, उदाहरण के रूप में हमारी मनःप्रवृत्ति, हमारी परिस्थितियाँ, क्षणिक आवेग और भावनाएँ, समाज के नियम और बन्धन आदि। यह तो वे शक्तियाँ हैं जिन्हें हम स्पष्ट देखते हैं और अनुभव करते हैं—पर एक और भी शक्ति है जिसका हम कभी विश्लेषण नहीं करते—वह शक्ति मानव-नियमों का उपहासात्मक प्रतिवाद है, और इस कारण मनुष्य ने भी उसे उपहासात्मक नाम दिया है—हिन्दी में हम उसे 'धुप्पल' कहते हैं, अंग्रेज़ी में 'फ्लूक' कहते हैं। इस 'धुप्पल' पर आप मनन कीजिए, और आप उसका अध्ययन अरोचक न पाएँगे। 'धुप्पल' का अध्ययन करने के समय आप ऐसी ऐसी घटनाओं से परिचित हो सकेंगे कि आपको न मनुष्य की शक्ति पर विश्वास रह जायगा,

और न भलाई तथा बुराई को ही आप महत्व दे सकेंगे। हाँ आप जी खोलकर हँस सकेंगे, लेकिन शर्त यह है कि आप खुश-मिज़ाज हों। यदि आप खुशमिज़ाज नहीं हैं, या यों कहिए कि आपने मुहर्रम में जन्म लिया है, तो इस धुप्पल की क्या मजाल है, जनाव उस धुप्पल के निर्माता भी आपको नहीं हँसा सकेंगे। रही एक हलकी सी मुसकराहट, वह तो बड़े लोगों के लिए है—और बड़े लोगों की बात में चलाने को तैयार नहीं।

हाँ तो धुप्पल की बात चली थो न? यह बात क्यों चली, आप यही प्रश्न करेंगे। दुनियाँ में और भी अनेक महत्व के प्रश्न हैं। आदर्शवादी कहेगा, 'महाशय जी आप किसी आदर्श को लीजिए, संसार उससे शिक्षा ग्रहण करे और जीवन में एक पवित्र साहस के साथ अग्रसर हो' यथार्थवादी कहेगा, 'जनाव, इन बेकार की बातों में क्या रक्खा है? मनोविज्ञान का विश्लेषण कीजिए और जीवन की घटनाओं में छिपे हुए सत्य को निकालिए, सोशलिस्ट कहेंगे यह क्या बक रहे हो? किसानों और मज़दूरों की बातें करो, उनके दुःखों को दूर करने का प्रयत्न करो, संसार से उत्पीड़न का नाम उठा दो।' और भी लोग न जाने क्या—क्या कहेंगे। पर मैं साफ-साफ कह दूँ कि मैं तो इस समय धुप्पल के फेर में पड़ी हूँ, कल शाम से; और धुप्पल के अलावा मैं इस समय किसी अन्य विषय पर लिखने को तैयार नहीं।

+

+

+

कल शाम के समय मैं अपनी आदत से मज़बूर होकर फिर एक महीने बाद उसी पुरानी रिस्टरों में चाय पीने जा पहुँचा। बात यों हुई कि मेरे एक दोस्त आ गए थे। उनसे बातचीत हुई, और उनके जाने के बाद मुझे एक लिफ़ाफ़ा मिला, जिसमें उन्होंने एक पत्र के साथ पाँच रुपए का नोट छोड़ दिया था। ये पाँच रुपए

वे मुझसे शर्त में हारे थे और वह शर्त यह थी कि मैं कहानी नहीं लिख सकता और यदि कभी लिख भी लूँ तो वह किसी अच्छे पत्र में नहीं छप सकेगी। मैंने शर्त बदने को बदली थी पर बाद में मुझे दुःख हुआ, क्योंकि यह शर्त बदना न था। बल्कि उन भित्र की जेब से जबरदस्ती रुपया निकालना था। अगर कोई व्यक्ति आपकी प्रतिभा को स्वीकार नहीं करता तो आपका यह कर्तव्य है कि उसे आप अपनी प्रतिभा से प्रभावित करके उससे अपनी प्रतिभा को मनाएँ, न कि आप उससे शर्त बद कर उस के रुपयों को छीन लें।

मुझे पाँच रुपये मिले, मुझ के ही थे। पर वे रुपये जिस तरह से आये थे उसी तरह वे खर्च भी होने चाहिएँ। घर में निकला यह सोच कर कि पाँच रुपये किसी संस्था को दान दूँ रास्ते में रिस्टोराँ मिलता। पैर रुक गये, या यों कहिए मेरी जेब के रुपयों ने पैर रोक दिये। सोचा पच्चीस फी सैकड़ा कमीशन हरेक सौदे में जायज़ है—मराठों ने चौथ ली थी, हिन्दी के ग्राहक तक किताबों पर पच्चीस फी सैकड़ा कमीशन माँगते हैं; फिर मैंने ही कौन सा पाप किया है कि पाँच रुपये में सवा रुपया अपने ऊपर न खर्च करूँ ? पैर मुड़े और मैं रिस्टोराँ के अन्दर।

मैंने एक बार रिस्टोराँ का सिंहावलोकन किया, अन्दाज़ा किस मेज़ पर बैठूँ कि एकाएक मेरा हाथ सैल्यूट करने को उठ गया। यहाँ यह बाला दूँ कि मैं जब यूनिवर्सिटी में था तो ट्रेनिंगकोर का मेंबर था। एक वर्ष तक सैनिक शिक्षा पाई थी और शायद एक आध वर्ष और भी सैनिक शिक्षा लेता यदि एक दिन आफिसर कमांडिंग ने कंधे पर राइफल लदवा कर चौदह मील तक पैदल रूट मार्च न करवा दिया होता। हाँ, तो सामने एक कोने में मेज़ पड़ी थी और उस पर दो फ़ौजी बैठे हुए चाय पी रहे थे।

एक के सीने पर विक्टोरिया क्रॉस मैडल चमक रहा था । जिस व्यक्ति के विक्टोरिया क्रॉस लगा हो उसे क्या कलक्टर; क्या कमिश्नर और क्या गवर्नर सब को सलाम करना पड़ता है, फिर भला मैं उसे सलाम क्यों न करता ? तै कर लिया कि उन दो फौजियों की मेज़ पर बैठ कर चाय पियूँ—विक्टोरिया क्रॉस पाए हुए लोगों से बातें करते हुए उन के साथ बैठकर चाय पीने का अवसर कोई रोज़ थोड़े ही मिला करता है, और साधारण आदमियों को तो कभी नहीं मिला ।

उसी मेज़ पर जाकर डट गया । उन फौजियों को रायद मेरा उनकी मेज़ पर बैठना बुरा लगा, क्योंकि एक ने आँखें मिचमिचाई और दूसरे ने अपनी मूर्छ पर हाथ फेरा । एक ने खोंसा दूसरे ने मेज़ पर हाथ पटक़ा । एक ने मुँह बनाया और दूसरे ने नाक सिकोड़ी । मैंने अब अधिक देर चुप रहना उचित न समझा । जिस सज्जन के विक्टोरिया क्रॉस लगा था उनसे मैंने कहा, ‘क्या यह विक्टोरिया क्रॉस आप को इस ग्रेट वार में मिला ?’

उन्होंने सिर हिला दिया ।

‘मैंने फिर पूछा, क्या मैं आपका नाम जान सकता हूँ ?’

‘सुखराम ।’

मैंने विक्टोरिया क्रॉस को गौर से देखते हुए कहा, ‘आप बड़े वीर आदमी हैं, हमारे देश को आप ऐसे वीरों पर अभिमान होना चाहिये !’

‘हूँ’ कह सुखराम ने आँखें नीची कर लीं ।

मैं एक-एक शब्द के उत्तर को सुनकर घबड़ा गया था और उठ कर चलने वाला ही था कि मेरी दृष्टि सुखराम के साथी पर

पड़ गई जो मुसकरा रहा था । मुझे घबड़ाया हुआ देख कर उसने कहा, 'बाबू साहेब, आप आखिर चाहते क्या हैं ?'

लड़खड़ाते स्वर में मैंने कहा, 'कुछ नहीं, यही जानना चाहता था कि वीरता के किस काम में आपके साथी को विक्टोरिया क्रॉस मिला ।'

सुखराम के साथी ने सुखराम की ओर देखा, इसके बाद उसने मेरी ओर । कुछ मुसकराते हुए उसने कहा 'बाबू साहेब, बतला तो दूँ लेकिन दो शर्तें हैं; पहली यह कि सुखराम बतलाने दें और दूसरी यह कि आप उस कहानी को सुन कर शक न करें ।'

सुखराम ने अपने साथी को घूर कर देखा । उसके साथी ने कहा, बाबू साहेब ! सुखराम नहीं चाहते कि मैं कुछ बताऊँ, अब आप ही समझिए कि मैं किस प्रकार बतला सकता हूँ ?'

इस समय तक मेरा कौतूहल काफ़ी बढ़ चुका था । जिसने वीरता नहीं की थी वह वीर का गुणगान करना चाहता था, पर वीर स्वयं ही नहीं चाहता था कि उसका गुणगान किया जाय । सुखराम क्यों मना कर रहा है, इसे जानने को मैं उत्सुक था । सुखराम के सम्बन्ध की कहानी विचित्र होगी, इतना मैं अनुमान किए हुए था । मैंने सुखराम के साथी से कहा 'जैसी आप की इच्छा, यदि आप के साथी नहीं चाहते हैं तो न सही ।' यह कह कर मैंने बाँय को आवाज़ दी और तीन ग्लास बियर के मँगवाए ।

कुछ थोड़ा सा इन्कार करने के बाद सुखराम और सुखराम के साथी ने बियर के ग्लास खाली कर दिये । इधर उधर की बातें हो रही थीं । उठते हुए मैंने सुखराम के साथी से कहा, 'यह मेरा दुर्भाग्य ही है कि मैं आपकी उस कहानी को न जान सका, अच्छा अब मैं चलूँगा ।'

बियर के ग्लासों ने सुखराम और सुखराम के साथी की गम्भीरता को दूर कर दिया था, थोड़ी देर में हम लोग पक्के दोस्त हो गए थे । सुखराम के साथी ने मेरा हाथ पकड़ कर मुझे बिटला लिया ।, बाबू साहेब, अब चाहे सुखराम कहने दें, चाहे न कहने दें, लेकिन मैं तो आपको कहानी सुनाऊँगा ही ।’

सुखराम भी मुसकराया, ‘अरे सुना भी दो, बौन मेरा बिगड़ जायगा ।’

सुखराम के साथी ने आरम्भ किया, ‘बाबू साहेब, हम लोग एक ही गाँव के रहने वाले हैं । जब लड़ाई छिड़ी, उस वक्त मैं फौज में था । पहले तो समझा लड़ाई जल्दी ही खतम हो जायगी; लेकिन वह काहे को खतम होने की, और जर्मनी ने दाँत खट्टे कर दिए । हम लोग न होते तो बाबू साहेब, अङ्गरेज शक्तियाँ यह लड़ाई हार जाते अरे हमीं लोगों ने तो यह लड़ाई जीती ।

“हाँ, तो जब लड़ाई शुरू हुई तब भरती भी शुरू हुई । और जैसे-जैसे लड़ाई जोर पकड़ती गई वैसे-वैसे भरती जोर पकड़ती गई । एक एक दिन भरती करने वाले पहुँचे हमारे गाँव, और उनके सामने पड़ गये सुखराम । सुखराम अपनी जोरू से पिट के नदी में डूबने जा रहे थे । सो भरती करने वालों ने देखा सुखराम को और सुखराम ने देखा भरती करने वालों को । सुखराम की समझ में बात आगई कि भरती करने वाले जान के ग्राहक हैं, और भरती करने वालों की समझ में यह बात आगई कि सुखराम ज़िन्दगी से आज़िज़ है । बस फिर क्या था, सुखराम भरती हो गए ।

“छै महीने तक कबायद सिखाई गई और सातवें महीने लाद दिये गए सुखराम जहाज़ पर लड़ने के लिए । वहाँ ये हम लोगों को मिले । सुखराम मुझे देखकर बहुत खुश हुए । लगे कहने कि दुनियाँ घूम रहे हैं, फौजी हैं, लौट कर मारे बूट के जोरू का कचूमर निकाल देंगे

ये बातें कर ही रहें थे कि हम लोगों को फायरिंग लाइन में जाने का हुक्म आया। फायरिंग लाइन में जाने का हुक्म पाते ही हमारे बटे-लियन के लोगों के चेहरे पीले पड़ गये, लेकिन सुखराम के चेहरे पर शिकन नहीं। आप नहीं जानते बाबू साहेब कि ऐसा क्या था ? बात यह थी कि सुखराम बेचारे क्या जाने कि फायरिंग लाइन क्या बला है ? इनके लिए तो जैसे हिन्दुस्तान से दिलाया आना वैसे ही बन्दरगाह से फायरिंग लाइन पर जाना।

हम लोग ट्रेंचों में पहुँचे और गोलाबारी शुरू हुई। अब सुखराम की हालत देखिए, इन्होंने रोना शुरू किया। ज़िन्दगी में तो तोप की आवाज़ सुनी न थी, यहाँ जो तोपें और बन्दूकें चलती देखीं, वो बौखला गए। इधर गोली चली और उधर सुखराम भागे, पर मैंने सुखराम को पकड़ लिया। ट्रेंचों के बाहर निकलना और मर कर गिर पड़ना बराबर ही है। लेकिन सुखराम बौखलाए हुए, उन्हें यह पता कहाँ ? हम लोगों ने लाख समझाया, पर इनकी समझ में बात न आई। समझते अब-अब रोने और चिल्लाने में इन्हें फुरसत मिलती। अन्त में हम लोगों ने इन्हें बाँध दिया।

“तीन दिन तक ये बँधे रहे, इन तीन दिनों तक हमें किन-किन मसीबतों का सामना करना पड़ा, यह हम ही जानते हैं ! चौथे दिन गोलाबारी ने भयानक रूप धारण किया। दुश्मन ने हमारी ट्रेंचों पर धावा बोला और हम लोग सब उनको रोकने में लग गए। सुखराम को यह मौका मिला, किसी तरह इन्होंने अपनी रस्सी तुड़ाई, और रस्सी तुड़ा कर ट्रेंच के ऊपर चढ़ गए और बेतहाशा पीछे भागे।

“बाबू साहेब ! सुखराम की ऐसी बेराम ज़िन्दगी भी हम लोगों ने नहीं देखी। चारों तरफ से गोलियों की बाँछारें हो रही हैं, तोप के गोले गिर रहे हैं, बम फूट रहे हैं और सुखराम इन सबों के बीच से सही सलामत भागे जा रहे हैं ! एक गोली कान से बातें करती हुई निकल

गई, तोप गोले से जो जमीन फट के उड़ली, उसके साथ इन्होंने भी दस फुट की दूलांग मारी। इनका साफा गोलियों से छलनी हो रहा था, जूते की एड़ियों में गोलियाँ चिपकी हुईं, बरदी गोलियों से छिदी हुई और सुखराम के बदन पर एक खराश तक नहीं !

‘सौ गज की दौड़ें तो आपने देखी होंगी, लेकिन मैं दावे के साथ कहता हूँ कि तेज़ से तेज़ दौड़ने वाला उस दिन इनका मुकाबला नहीं कर सकता था। बीच-बीच में गढ़े थे और वहाँ इन्होंने जो लांग-जंप किया है, उसके आगे दुनियाँ का रिकार्ड माना है, क्योंकि एक दफा यह करीब इक्कीस फीट चौड़ा गढ़ा फाँद गये थे। और इन्होंने जो कला-बाजियाँ खाईं, अगर आज यह उनको दोहराये तो किसी भी सरकस में हजार पाँच सौ रुपया पैदा कर सकते हैं। हम लोग चिल्लाते ही रह गये, लेकिन सुखराम भला काहे को रुकने के ?

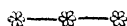
‘अब सुखराम डेंजर-ज़ोन के बाहर निकले। लेकिन उनका दौड़ना बन्द नहीं हुआ। डेंजर-ज़ोन के बाहर फंडेल साहब का खेमा गढ़ा था। तारबर्की हो गयी थी और फंडेल साहब दूरबीन लगाये बैठे थे जब सुखराम खेमे के पास आये तो फंडेल साहब ने चिल्ला कर कहा ‘कहाँ जाता है !’ सुखराम एक सैफिड के लिये रुके, हाँपते हुये उन्होंने कहा, ‘साहेब, गौली ! गौली !’ और यह कहते हुए सुखराम बेहोश होकर गिर पड़े।

‘यहाँ तक जो कुछ हुआ वह ठीक ही हुआ। सुखराम फिफ्ट रह से बच आये फौन बतलाय। लेकिन मालूम होता है भगवान् अच्छा खासा मजाक करने पर तुले हुए थे। फंडेल साहब ने दौड़ कर सुखराम को खुद हस्पताल भिजवाया। इसके बाद उन्होंने अपने खरीते में लिखा, ‘सुखराम ने दड़ी बहादुरी का काम किया। जिस वक़्त ट्रेंचों में एम्ब्यूशन खत्म हो गया और ट्रेंचों से यहाँ तक की कम्प्यूटीकरण बान नहीं कर रही थी, यह आदमी अपनी जान पर खेल कर ट्रेंचों के बाहर

निकल कर यहाँ एम्ब्यूनेशन खत्म हो जाने की इत्तिला देने आया। ताज्जुब हो रहा है कि यह शव्स इतनी दूर जिन्दा कैसे चला आया-हज़ारों गोलियों के निशान इसके बदन पर के कपड़ों पर हैं, पर इसके एक भी गोली नहीं लगी। शायद इसके इस विल-फोर्स ने कि किसी-न-किसी तरह एम्ब्यूनेशन खत्म होने की इत्तिला देती ही चाहिए, इसे जिन्दा रखा। यहाँ पर हम परमेश्वर का हाथ देखते हैं। साथ ही हम यह सिफारिश करते हैं कि सुखराम को उसकी बहादुरी के लिए विक्टोरिया-क्रास दिया जाय।' और बाबू साहेब आप देखते ही हैं कि सुखराम को विक्टोरिया क्रास मिल गया।'

मैं मुस्कराया। पर जाने मैंने यह प्रश्न क्यों कर दिया, 'और इनकी बीबी का क्या हाल है ?'

पत्वराम का साथी सुखराम का हाथ पकड़ कर उठ खड़ा हुआ। हँसते हुए उसने कहा, 'बीबी ! अरे हाँ, अब इनकी बीबी जब इन्हें पीटने लगती है, तब विक्टोरिया क्रास जेब में रख लेते हैं।'



यह किस की तमवीर है

अगर यह उसूल कायम हो जाता कि शादी से पहले किसी तरह लाजिमी तौर पर लड़की लड़के को देख ले और लड़का लड़की को, तो जनाब, आप यकीन मानिये कि कम-से-कम मेरी तो शादी ही नामुमकिन थी ।

शादी से पहले मैं इस उसूल का कट्टर हामी था ! जिसे लड़की से पहली बार मेरी सगाई तै हुई, उसे मैंने किसी-न-किसी तरह ताक-भाँक कर देख लिया । बेहद पसन्द आई । उस-के बाद यह शौक चर्चाया कि वह भी किसी तरह मुझे देखे । यह भी मुमकिन हो गया । मगर जनाब साथ ही उसका नतीजा यह निकला कि उस शोख और खूबसूरत लड़की ने मेरे बारे में अपनी एक सहेली को जो कुछ लिख मारा, उसका हूबहू उद्धरण यह है—“ आँखों के गिर्द घेरे, कमर झुकी, पीनक में रहते हैं; हाँ यह मैं मानती हूँ कि पढ़ने-लिखने में तेज़ हैं; समझदार हैं; खुश तबीयत हैं; लेकिन मेरी समझ में साथ ही अक्रीमची भी हैं । खुदा की कसम, तुम्हीं बताओ कि यह भी कोई हुलिया है कि छोटा-सा-क्रुद, उस पर कुबड़ी कमर, ऐनक लगाए .. भँवें चढ़ाये .. चले जा रहे हैं, गरदन झुकाये, टटोलते हुए ! चेहरे को देखो तो जर्द, चपटी-सी नाक, बदरंग मटीला चेहरा, मुर्दाना,

छाया हुआ—मालूम दे, जैसे हड्डियों पर खाल मढ़दी हो ! फिर मोटे-मोटे होंठ और जगह-जगह पर चेहरे पर कोण, त्रिभुज, आयत चतुर्भुज, कोने और फंगूरे निकलें हुए और खुदा मूठ न बुलवावे तो गालों में इसी उम्र में ऐसे गढ़े कि दोनों तरफ आध-आध पाव चने आ जायें ! यह हिन्दोस्तान है । मेरी शादी जबरदस्ती करा दी गई तो यह सब सर आँखों पर; मगर दिल की पूछती हो तो बता चुकी, न मैं रंजीदा हूँगी और न खुश, क्योंकि यही दस्तूर है...इत्यादि ।

खत में पढ़ा । आत्म-सम्मान भी तो आखिर कोई चीज़ है । लड़की को मैंने अच्छी तरह देख लिया था । मेरा दिल बैठ गया । आइना उठाकर देखा और चुपक से रख दिया । अजीब खोंच-तान में था करूँ या । न करूँ ? ऐसी लड़की हाथ से जान का एक तरफ अफसोस था और दूसरी तरफ गौरव काजा करती थी । बहुत खाच तान के बाद तकर लिया कि ऐसी नाला यह लड़की से हाज़िज़ हर्गिज़ शादी न करूँगा, जो खुद मुझे पसन्द नहीं करता । तुनाचे बहन जी को मैंने वह बात दिखा दिया । वे खत को देखते ही आग बबूला हो गईं । खुदा खुदा करके उन्हें चुप किया । उन्होंने मुझे अजीब ढलाया—‘लड़का बदमाज़ है, किसी काम की नही, मैं खुद ही यहाँ चाहता था,’ फिर उन्होंने दरजनों नाम ले डाले ।

इसके बाद दो लड़कियाँ मैंने नापसन्द कर दीं क्योंकि वे बाहरी खूबसूरती में पहली जैसी नहीं थीं । उसके बाद तीन ने मुझे नापसन्द कर दिया और तीसरी तो इस कदर बदमाज़ निकली कि पट्टेस पास होने और नई सभ्यता में शिक्षित होने पर भी उसने शाहर में मेरा नाम रोज़ीनैट (Rozinait) रख दिया । इसलिए है कि इस पर मेरा खून कैसे खौला होता ।

इसके बाद दस-पन्द्रह जगह चुमाच की कोशिश की; लेकिन नीजा यह हुआ कि या तो मुझको किसी ने पसन्द न किया, या जिन्होंने मुझे पसन्द किया—यानी जिन्होंने मुझे नापसन्द नहीं किया—उन्हें मैंने नापसन्द कर दिया। फल यह हुआ कि मैं खुद तंग आगया और बहन जी भी परेशान होगईं, क्योंकि मुझे चुपके से लड़की दिखाने का इन्तज़ाम उन्हीं के सिपुर्द था। हम भाई-बहन की तज़वीज़ यह थी कि लड़की पसन्द आजाने पर सगाई की बातचीत हो। अब एक जितनी लड़कियाँ मैंने नापसन्द की थीं, वे सब मुझसे कहीं ज्यादा खूबसूरत थीं; लेकिन जनाब मैं तो सब से खूबसूरत चाहता था। किस्सा यह था कि जल्द ही मुझे मालूम होगया कि यह उसूल ही एक मिरे से चलता है कि लड़की लड़के को देखे। लड़के की लड़की को देख लेना ही काफी है, और यही कामयाबी की कुंजी है।

बस, इसा मुनहरे उसूल पर चलने से हा मेरी मनचाही शादी मुमकिन हुई। सगाई त होने के बाद हा मैंने अपनी तमाम फोटो हिफ़ाज़त से छिपा दी, ताकि हर एक आने-जाने वाला की नज़र में न पड़े और उन्हें उड़ा ले जाने का डर भी न रहे। क्योंकि बहन जी ने कह दिया था—‘अबकी मरतबा अगर तुमने अपनी देवा-भाला कराई, तो मैं फिर कोई दिलचस्पी न लूँगी।’ मैं भी अच्छी तरह जानता था कि अगर यह लड़की मुझे देख पायगी, तो ताज़्जुब नहीं कि हुसक जाय या मेरे ऊपर तरह-तरह के रिमार्क पास करके मुझे मज़बूर करदे कि मैं उसकी तरफ़ से फिर जाऊँ। खैर, इसी किस्म की एह्तियात बरतने पर मुझे कामयाबी मिली और मेरी शादी होगई—लेकिन लड़का-लड़की एक दूसरे को पहले देखलें; इस सिद्धान्त को तिलाँजलि दे कर।

६६ पेज की नीचे से दूसरी लाइन में आये हुए रोज़ीनेंट पर नोटः—

१ एक यूरोपियन किस्से के Don Quixot la manche नामक ख़ूबी सूरमा नायक के घोड़े का नाम रोज़ीनेंट था, जिसके बदन पर दुबलेपन के कारण तरह-तरह के कोते कपड़े निकलते थे।

(२)

मुझे अगर अपनी बीबी की तरह-तरह की तसवीरें खींचने और खिंचवाने का शौक था तो कोई ताज्जुब नहीं। तसवीरें खिंचवाईं, जगह-जगह से इनलार्ज करवाईं, हर रुख से बिठा कर तसवीर ली, हर लिबास और तर्ज़ में तसवीरें खींचीं, उम्दा-उम्दा फ्रेम लगवाये, तसवीरों में तरह-तरह के रंग भरवाये; गरज़ फोटोग्राफी की हद कर दी और कमरा मेरी बीबी की तसवीरों की चित्रशाला बन गया।

लेकिन इस चित्रकारी का नतीजा यह हुआ कि 'खरबूजे को देख कर खरबूजे ने रंग पकड़ा' और बीबी को अपने दिलरुबा शौहर की तसवीरें खिंचवाने का शौक लग गया ! अब तो खुदा ही हाफिज़ है।

+

+

+

+

खानम (श्रीमती जी) ने मेरी मौजूदा तसवीरों को गौर से देखकर कहा—'इन में से कोई ठीक नहीं सब घर की खींची हुई हैं न।'

भाभी जी ने मुसकरा कर ताने से कहा—'यह घर की खींची हुई हैं ! ज़रा आँखों से तो देखो।'

'घर की खींची हुई नहीं हैं, तो किसी ऐसे वैसे ने खींची हैं।'—
खानम बोली।

भाभी जी ने कहा—'नीचे नाम लिखा है—ऐसे मशहूर फोटोग्राफर की दुकान की ...'

खानम झल्ला कर बोली—'ऊँची दुकान फीका पकवान, सब बेगार टालते हैं। इससे अच्छी तो खुद मैंने खींची है !'

'आखिर इसमें खराबी कौन-सी है ?'—भाभी ने खानम से पूछा—

‘साफ तसवीर है, बाल-बाल साफ आया है। यह देखा, आँख के नीचे की हड्डी... ज़रा भाई, उधर मुँह फेरना तो,—मैंने मुँह फेर लिया तो बोली,—यह, यह, यह, यह ! देखो, आँख के नीचे की हड्डी जैसी साफ इस तरह से दीखती है, वैसी तसवीर में है और यह देखो, आँख से नीचे का ढाल बराबर चला आ रहा है और ठोड़ी के पास ... यह देखो, उभरी हुई हड्डी कैसी साफ है।’

इस तरह भाभी ने मेरे चमरखे चेहरे के चढ़ाव-उतार का भाव्य करक साबित कर दिया कि तसवीर हूबहू ठीक है, नकल एकदम असल जैसी है। खानम को बेहद बुरा मालूम हुआ। उसने तसवीर भाभी के हाथ से झट ला और जल-मुन का कड़ा—‘अच्छा बहन, मैं कुछ तुम से थोड़े कह रही हूँ, जो बहस पर तुल पड़ें ?’

मेरे एक दोस्त थे, जिनसे मेरी बहस रहती थी कि मैं तकड़ा या बड़। जाड़ों में हम दोनों बादाम का हलवा खाते थे और छिपे-छिपे दंड पेलते थे, फिर दोनों पहलवान अपने-अपने हष्ट-पुष्ट शरीर को नापते और स्टेशन पर जाकर अपने को तोल कर मुकाबला करते थे। कभी मैं एक मन पाँच सेर का निकलता था और वे एक मन छः सेर के, कभी वे सेर-आध-सेर घट जाते थे। मेरी तसवीरों में कहीं उनकी भी एक तसवीर निकल आई। भाभी ने कहा, ‘ज़रा इस चमरखे को देखना... देख कर ही डर लगता है।’

खानम दिल-ही-दिल में सुलग गई और फुर्ती से तीसरी निकाली और कहा—‘ज़रा जेठ जी को तो देखना, जान पड़ता है मानो बोरा रखा है। मुझे तो देख कर फुरेरी आती है... ज़रा देखिए तो गरदन !’

भाई साहब दरअसल बेहद मोटे थे। मगर यह चोट थी दरअसल भाभी के ऊपर, और भाभी जी ने एक मुसकराहट से उसे महसूस

भी किया । खानम ने कहा—‘भागने के, न दौड़ने के’...

भाभी ने फौरन प्रतिवाद करते हुए कहा—‘खैर, दौड़ने-भागने की भले आदमियों को ज़रूरत ही क्या है ? मर्गियों पकड़ने के लिए आदमी नौकर हैं ।’

परसों भाई साहब के दौड़ने का नमूना मेरे सामने अजीब भरी तरह पेश आया था । बात यह हुई कि मर्गी भाग निकली थी । उसे पकड़ने को एक तरफ से भाई साहब ने कोशिश की थी, दूसरी तरफ से मैंने । यह जाहिर है कि भाई साहब अपने मोटे बदन से कैसा कुछ दौड़ सके थे ।

‘जो खुद दौड़-धूप न कर सके, वह आदमी ही क्या ?’—कह कर खानम तसवीरें समेट कर चली बनी; लेकिन चलते वक्त मुझ से कह गई—‘आज शाम को फोटोग्राफर को ले आना ।’

३

फोटोग्राफर आया तो सब से पहले खानम ने उसका कैमरा देखा। फोटोग्राफी वह जैसी जानती थी, यह मुझे मालूम है; लेकिन ‘कोडक’ और ‘ज़ाइस’ आदि कैमरों के सूचीपत्र देख-देख कर उसे तरह-तरह के कैमरों और लेंसों के नाम ज़रूर याद हो गए थे, और दरअसल उसकी फोटोग्राफी की जानकारी यहीं तक थी ।

‘आपके कैमरे में कौन-सा लेंस है ?’—खानम ने फोटोग्राफरी शान से पूछा । फोटोग्राफर ने किसी ऐसे जर्मन लेंस का नाम लिया, जो खानम ने ख्वाब में भी न सुना था ! खानम के चेहरे पर अज्ञान की एक हल्की-सी घबराहट दौड़ गई; लेकिन मज़ा यह कि जवाब में ‘अच्छा’ कहकर लेंस उठा लिया और उस पर लिखे हुए नाम को पढ़ने लगी । लेकिन

वह बेतुका कम्बख्त जर्मन नाम कोई पच्चीस-तीस अक्षरों का था जिसका उच्चारण हम हिन्दोस्तानियों के लिए नामुमकिन-सा है। लिहाजा नाम पढ़ने की बेकार कोशिश करके खानम ने पूछा— 'कितने का कैमरा है आप का ?'

'नया मंगाया है।' कुछ धमकी के साथ आँखों में आँख डाल कर फोटोग्राफर ने कहा—'सिर्फ लेंस चौदह सौ का है ?'

खानम ने आहिस्ता से लेंस फोटोग्राफर के हाथ में दे दिया। फोटोग्राफर बोला—'आप कहेंगी कि लेंस पर इतने दाम क्यों खर्च श्रिये, वो वह इसलिए कि यह लेंस बाल की खाल खींच लेता है।'

'बाल की खाल' कहते वक्त फोटोग्राफर साहब ने इस ढंग से हाथ चलाया, गोया वे खुद ही बाल की खाल उधेड़ रहे थे।

लेंस कैमरे पर चढ़ा दिया गया, अब खानम ने प्लेटों पर ध्यान दिया और कहा—'रैपिड हैं न ?' यह कह कर उसने प्लेटों के डिब्बे की तरफ हाथ बढ़ाया।

'एक्सट्रा रैपिड।'—फोटोग्राफर ने कहा।

खानम को मालूम होगया कि यह फोटोग्राफर रोब में आने वाला नहीं वरना इससे पहले जो आया था, उसे वो उसने नामालूम कितना रस खाकर छोड़ा था। कैमरा जगह पर लगा दिया गया। खानम से मुन्ने कपड़े पहनने का हुक्म दिया।

में कोट पहन कर टाई लगा रहा था कि खानम कैमरे में आई। 'आपको तो मुन्ने ज़िद है'—यह कह कर हाथ से टाई बसीट कर उसने वह फेंकी।

'हैं, हैं !, मैंने मुँह फाड़ा।'

‘कोई दूसरी टाई ही नहीं जुड़ती, बस यही एक रह गई है ? सुबह बही, शाम यही...शाम यही, सुबह यही !’

टूंक खोल कर डिब्बे से एक नई-सी टाई निकाली और उसे हाथ में लेकर उसने कहा—‘और कोट ! कोट !’

‘मैंने कोट की तरफ देखा —‘वर्यो क्या हुआ ?’

‘जैसे जानते ही नहीं कि फोटो के लिए काला कोट होना चाहिए’ यह कह कर वह जाड़ों का कथई ब्लेज़र निकाल लाई ।

‘मार डालेगी...गर्मी में’ मैंने ब्लेज़र देखकर कहा—‘खुदा के के लिए...’

‘आपको तो फिज़ूल बातें आती हैं । छिन-भर को तो पहनना है ।’-यह कह कर बुरश किया जाने लगा ।

‘आईए साहब !’ फोटोग्राफर साहब ने आवाज़ दी ।

मैंने जल्दी-जल्दी कपड़े पहने और बाहर को चला ।

खानम ने जोर से बाँह पकड़ कर कहा—‘आइने में देखो तो ज़रा ज़रा सिर को—सिर को...’

मैंने शीशे में देखा । बाल बिल्कुल ठीक बने थे, लेकिन वैसे नहीं, जैसे खानम को पसन्द थे । वैसे बनाना ही मुश्किल था । मैंने कहा—‘खुदा के वास्ते मुझ से वैसे बाल न बनाओ—औरतों-जैसे ।’

‘आप भी क्या फिज़ूल बातें करते हैं...नहीं मानेंगे आप... इधर...इधर...लाओ...मैं न मानूँगी ।’

पकड़ लिया खानम ने आखिर को । मुझे बालों का यह नामाकूल तर्ज सख्त नापसन्द था; मगर...

कुर्सी पर बैठ गया और प्यारी नाइन ने पीछे खड़े होकर ठोड़ी पकड़ कर मेरा सिर अपनी गोद से लगा कर बाल बनाना शुरू किया। बड़ी कामयाबी के साथ बुरा से नोकपलक ठीक करके इतमीनान से देखा। अब मुझे जाने की इजाज़त थी। मैं जाकर कैमरे के सामने कुर्सी पर बैठ गया। फोटोग्राफ़र ने कैमरे का 'लेवल' ठीक करके काले कपड़े में सिर डाल कर शिस्त लगाई और थोड़ी देर बाद सिर निकाला।

“ठीक है न ?” — खानम ने पूछा और अपना सिर काले कपड़े में डाल कर देखा। कैमरे के ताकतवर लेंस ने कुछ और ही कहानी कही। एकाएक खानम ने सिर निकाल कर फोटोग्राफ़र से कहा—
‘बिल्कुल ग़लत है।’

‘कैसे ? साहब, कैसे ?’

‘तुम खुद देखो।’

फोटोग्राफ़र ने फिर अपना सिर कपड़े में डाला और खानम ने कहा—‘देखिये ग़ौर से... दोतरफ़ा चेहरे को बाईं तरफ़...?’

‘क्या है ?’—फोटोग्राफ़र ने उसी तरह सिर डाले हुए पूछा।

‘किस क़दर ख़राब तस्वीर आयगी... और आप कहते हैं, क्या है ? ‘पोज़’ ही ग़लत है’—खानम बोली।

‘तो साहब ग़ालों का गड्ढा तो आयेगा ही’—सिर निकाल कर फोटोग्राफ़र ने कहा। इधर मैंने अपने आप एक अज्ञातभाव से वे अख्तियारी के साथ ज़रा ग़ाल फुलाये। जवाब में खानम ने घुन्ना कर फोटोग्राफ़र को देखा और कहा—‘कैसे आप कहते हैं ?’ फिर मेरी ओर घूम कर बोली—‘आप सीध में उस बकरी की तरफ़ देखिये।’ सामने ज़रा बाएँ हाथ को एक बकरी बैठी जुगाली कर रही थी।

अब खानम ने फिर कपड़े में मिर डाल कर देखा और हाथ से इशारा करके कहा —‘उधर को ... इधर ... उधर ... बस-बस ... ऊँह...इतना नहीं । बस । एक ज़रा इस तरफ ...हाँ, मिर ऊँचा... अरे, इतना नहीं । बस, बस, ... ज़रा आगे...’ यह कह कर खानम ने सिर निकाला और कहा —‘ बस, अब आप हिलिएगा नहीं । आप तो उस बकरी पर नज़र जमाये रहिये ।’

अब फिर फोटोग्राफर साहब की बारी आई। उन्होंने मिर डाला और बोले—‘यह ‘पोज़’ तो उससे भी शलत है ।’—यह कहकर उन्होंने सिर निकाल लिया और कहा—‘बालों को आपने नहीं देखा । बेतरह ‘हाई लाइट’ पड़ रही है । फिर ओठ बाहर निकले मालूम हो रहे हैं । और ठोड़ी की हड्डी...आगे को... फिर कनपटी’ ।

इधर कुछ मेरा भी हाल सुनिए । गर्मी के मारे बुरी दशा थी । उस पर से गरदन की रण-रग में दर्द, क्योंकि सारी रंगें गरदन को एक खास तरीके पर साधने के लिए मजबूरन तैनात की गई थीं—जैसे खीमा खड़ा करने के लिए डोरियां बाकायदा खिंची रहती हैं ! ओठ मेरे मोटे हैं । उन्हें मैं खुद ही दांतों से पकड़े ही नहीं, बल्कि मानो पिये बैठा था । बालों की पतली नाजुक रंगें इस खींच-तान में शल हो चुकीं थीं । पिचची गालों को थोड़ा फुलाने की कोशिश में मुँह में हवा की थोड़ी साँस रोके बैठा था कि गालों में हवा का परिमाण कम ज्यादा न होजाय, या एक तरफ का गाल दूसरी तरफ से ज्यादा न फूल जाय । आप खुद तजरुबा करें, तो आपको मालूम होगा कि यह काम कितना मुश्किल है । ये सब बातें तो थी ही और फिर बकरी ! वह भला निचली काहे को बैठती । खड़ी हो गई और घूमकर दूसरी जगह जा बैठी । मैंने उसकी जगह अन्दाज़ ली थी कि यहाँ बैठी है और सोच लिया था कि उसी जगह नज़र रखूँगा;

लेकिन फिलहाल आँखें बकरी पर थीं। बोल सकता न था, क्यों कि ओठ मसूड़ों से चिपकाये बंठा था।

खानम ने सिर डाला और थोड़ा-सा 'इधर... उधर... ऊपर... नीचे' करने के बाद फोटोग्राफर से कहा—'अब तसवीर ले लो।'

फोटोग्राफर ने भी झगड़ा खत्म करना चाहा। उधर उसने 'रेडी' कहा, इधर मैंने ज़रा गालों में और हवा पकड़ी। 'वन, टू, थ्री।' तसवीर खिंच गई।

मैंने इतमीनान की सांस ली। खानम ने फोटोग्राफर से 'सर्वार बढ़िया होने के बारे में बातचीत की और उसे हुक्म दिया गया कि जल्द-से-जल्द प्लेट धोकर दिखाये, उसके बाद 'प्रूफ'।

(४)

शायद आपने स्कूल में हिसाब पढ़ा होगा, और आप धन, ऋण, गुणा भाग, कोष्ठक, वर्गमूल, आदि चिन्हों से परिचित होंगे। ऋण का चिन्ह होता है यह '—', जिसको अंगरेज़ी में 'माइनेस' कहते हैं, और छोटे कोष्ठक का चिन्ह है यह (), जिसे अंगरेज़ी में 'ब्रैकेट' कहते हैं।

प्लेट धुलकर सूखकर आया, तो खानम ने कहा—'यह क्या है? नाक और ठोड़ी के बीच में एक छोटे कोष्ठक के भीतर ऋण का चिन्ह मौजूद था—इस तरह (—)।'

'मुँह है' फोटोग्राफर ने कहा—और वाकई था भी मुँह ही ! मूँछें मैं मुँबवाता था।

'अरे साहब यह क्या? दोनों तरफ? खानम ने कोष्ठकों को दिखाकर पूछा 'यह क्या है?' फोटोग्राफर ने इसे जानबूझकर अनजान बनना खयाल किया और जवाब में मेरे चेहरे की तरफ देखा। मैंने स्वभावतः एक जम्हाई लेकर एक खास ढंग से मुँह सिकोड़ते हुए

उन कोष्ठकों को उड़ाने की कोशिश करनी चाही—यानी थोठ समेटकर जरा आगे कर दिये ।

फोटोग्राफर ने मेरी तरफ उंगली उठाकर कहा—‘ये भुर्रियाँ हैं । वाछों के इधर-उधर देखिए ।’

‘इतनी ज़ाहिर तो नहीं हैं’ ; खानम ने कहा ।

‘मेरा लेंस तो बाल से भी बारीक निशान को नहीं छोड़ता, फिर मेरी क्या खता है ? लेंस का तो काम ही यही है कि असल की नक़ल उतार दे ।’

‘प्रिन्ट लीजिए... प्रूफ़ लाइए... देखें ।’—खानम ने कहा ।

प्रूफ़ आया और मैं बेचैन-सा होगया, क्योंकि गाल कृत्रिम ढंग पर फुलाये हुए थे, यह साफ़ मालूम होता था । ‘यह क्या ?’

कह कर खानम ने एक प्रलयकारी दृष्टि मेरे ऊपर डाली—इसी हरकत की बदौलत तो ये कोष्ठक इतने ज़्यादा ज़ाहिर हो गये ।’

मैं क्या जवाब देता ? कुछ हलकाकर अपराधी की तरह उस प्रलयकारी दृष्टि को देखकर मन-ही-मन दुआ माँगने लगा ।

खानम ने गुस्से में भरकर प्लेट को उठाकर फेंक दिया । प्लेट भूज से फर्श पर गिरकर खील-खील होगया ।

प्लेट फेंक कर खानम ने फोटोग्राफर से कहा—‘आप न तो ‘पोज़’ लेना जानते हैं, न यह कि किसी खास जगह का कैसे फोकस लें । आपको यह भी पता नहीं कि रोशनी का रुख किधर है और फिर प्लेट धोने में तो आप कमाल ही करते हैं । बिल्कुल सियाह भट तसवीर खींच कर रख दी ! बस, कैमरा कीमती हो, यह न मालूम क्या सोच रखा है सब ने !’

फोटोग्राफर इसका क्या जवाब देता ? उसने मेरी तरफ देखा । मैंने उसे आँख मार दी कि चुप रहे । दुकानदार का आदमी

समझ गया और बोला—‘आप ख़फ़ा क्यों होती हैं, मैं दूसरी तैयार करता हूँ……अभी ।

‘आप से नहीं खिंचेगी’—ख़ानम ने कहा ।

‘अभी लीजिए । अभी-अभी ज़रा देखिये मेरी कारीगरी ।’—
ख़ानम की कमज़ोरी को उसने मेरे आँख़ों के रूपकाते ही ताड़ लिया था ।

+ + + + +

फिर मुझे सौ सिंगार करने पड़े । बन-ठन कर फिर मैं मूर्ति की तरह कुर्सी पर जा डटा । फिर वही मंज़िलें तै की गईं । अब की बार मैंने गाल एक दम नहीं फुलाये, क्योंकि फोटोग्राफर ने दूसरी ही तरकीब निकाली थी । वह यह कि छोटे-छोटे दो पान खिलाकर उसने कहा कि इन्हें चबाकर दो बराबर के हिस्सों में इधर-उधर बांट लो । ज्यों-त्यों करके तसवीर ली गई ।

शाम ही को फोटोग्राफर ने प्लेट पेश की । ख़ानम ने नापसन्द कर दी । मगर इसके पहले कि वह नापसन्दी का कारण बताये, फोटोग्राफर ने यह कह कर उसकी जवान बन्द कर दी—‘आप अभी कुछ न कहें । अगर तसवीर नापसन्द हो; तो जो चोर की सज़ा सो मेरी ।’

ग्रूफ़ लिया गया, बेहद खराब आया—यानी दूसरे शब्दों में बिलकुल असल जैसा था । कैमरे के ताक़तवर लेंस ने गालों की मिट्टी पलीद कर दी थी । बीच में पान दबा होने से वे उठ आये थे, लेकिन उनके इर्द-गिर्द आगरे के किले जैसी खाई थी । मुँह के दोनों ओर कोष्ठक अपनी जगह पर बदस्तूर थे; लेकिन उतने ज्यादा ज़ाहिर नहीं थे, जितने हवा से गाल फुलाने वाली तसवीर में फिर चेहरे की दूसरी जगहों की तमाम भुर्रियाँ, जो एक

चमरखे चेहरे की अपनी खास निशानियाँ हैं, इस सफाई से अपनी-अपनी जगह पर मौजूद थीं कि जी यही चाहता था कि सब को एकदम से मिटा कर धर दे। फिर प्रूफ के अधूरेपन से सारे चेहरे पर धूप-छाँह-सी छिटकी हुई थी। अपनी आँखों पर खुदप-सन्दी की ऐनक चढ़ी रहने से चेहरे की यह स्वाभाविक विशेषताएँ मुझे आइने में नज़र न आती थीं, लेकिन एक ताकतवर लैस और उम्दा कैमरे ने सारा कच्चा चिट्ठा खेल कर धर दिया था। फोटोग्राफर इस बढ़िया तस्वीर को 'अधूरी है, सिर्फ खाका है'—कह कर वापिस ले गया—'रिटच' करने के लिए। वरना हकीकत तो यह है कि तस्वीर न सिर्फ मेरी सब से सच्ची तस्वीर थी, बल्कि हबहु असल के मुतादिक थी।

'अरे बुलाना तो ज़रा'—खानम ने बाँखला कर फोटोग्राफर को बुलवाया। वह आया तो खानम ने उँगली के इशारे से मुझ को देख कर बताया—'यह न आना चाहिए।' यानी दोनों कोष्टक।

फोटोग्राफर ने इतमीनान दिलाते हुए कहा—'खातिर जमा रखिये, इनका कहीं पता भी न चलेगा।' + + +

पाँच दिन बाद की बात है। मैं कालेज से वापिस आया, देखा कि सारा कमरा आइने की तरह चमक रहा है। खानम खड़ी हुई दोनों हाथों की मुठ्ठियों को दूरबीन बनाये हुए दीवार की तरफ देख रही थी। मेरे पैरों की आहट सुनकर उसने मेरी तरफ देखा। मेरा एक कदम बरामदे में था और दूसरा कमरे में। हम दोनों ने एक दूसरे को देखा, फिर मैंने दीवार की तरफ देखा। सामने दीवार पर मेरी तस्वीर शोभायमान थी। वल्लाह ! ने क्या तस्वीर थी कि मैं देखते का देखता रह गया।

‘इस बार तो फोटोग्राफर ने कमाल कर दिया ।’ —मैंने कहा ।

‘क्या लाजवाब तस्वीर खींची है !’ तस्वीर की मालकिन यानी खानम ने कहा ।

‘यह किस की तस्वीर है ?’ कमरे में दाखिल होते हुए भाभी जी ने पूछा । फिर ज़रा ज़ोर देकर—‘यह किस की तस्वीर है ?’

खानम ने भाभी जी की तरफ देखा । भाभी जी ने खानम और तस्वीर और मेरी तरफ देखकर खानम से फिर सवाल किया—‘कहाँ से आई..... यह किस की तस्वीर है ?’

खानम के आन्तरिक विचारों का मुझे पता नहीं, मित्रा इसके कि उसके खूबसूरत बिने हुए चेहरे पर गुस्से का गुबार-सा छा गया । हाँ, मुझसे पूछिये कि मेरा क्या हाल हुआ । हालाँकि तस्वीर किसी तरह मेरा फोटो कहलाने की हक़दार न था और न मैंने उसे बनवाया ही था, फिर भी उसकी पैदायश का ज़िम्मेदार होने की वजह से मैं कुछ अजीब शरमिन्दगी में था ।

भाभी जी ने मेरी खामोशी के कुछ और माना लिये और ग़ौर से तस्वीर और मेरे चेहरे का मुहावला करके मुसकरा कर मिर-हिलाते हुए कहा—‘आपकी है ? .. बताइये .. आपका है न ?’

‘उफ़फोह !’ खानम ने जल कर कहा—‘उफ़फोह, कैसी बनती हैं, आप जैसे ..’

इतने में दरवाज़े की चौखट पर खट से आवाज़ हुई और भाई साहब ने भारी आवाज़ में कहा—‘क्या है ? हैं !.....यह किस की तस्वीर है ?’

‘वूब ! यह आपकी तस्वीर है !’ भाभी जी ने कहा ।

‘यह किस गधे ने तसवीर खींची है ?’ भाई साहब ने कहा—‘लाहौल बिलाकूवत !’

खानम का दिल बैंगन का भुर्ता हो रहा था । क्या मैं जवाब देता, क्या वह !

भाभी जी के चेहरे पर बेइन्तहा शरारत-भरी मुसकराहट नाच रही थी । उन्होंने जल्दी-जल्दी पेंसिल साफ की और दाहने हाथ में पेंसिल पकड़ कर पहले मुझे निहायत गौर से देखा, फिर पेंसिल लगा कर तसवीर को धूरना शुरू किया । उनका चेहरा और भी खिल उठा । उनकी शरारत-भरी मुसकराहट और मुसकराहट-भरी शरारत ज्यादा से और भी ज्यादा ज़ाहिर होती गई । खानम उनके चेहरे की तरफ टकटकी बांधे देख रही थी । जिस अनुपात में भाभी जी खिलती जा रही थीं, उसी अनुपात में खानम के चेहरे पर गुस्सा और झुँझलाहट बढ़ती जाती थी । यहाँ तक कि आखिरकार आँखों में जंग का प्लान हो गया ।

भाभीजी कमरे से कहकहा लगाती हुई गईं । जब ज़रा गुस्सा कम हुआ, तो खानम ने उस षड्यंत्र की आशंका का कुछ आभास दिया, जिसकी शुरुआत भाभी जी ने की थी । दरअसल भाभी जी और भाई साहब दोनों लड़ने की नीयत से सलाह करके आये थे ।

अभी यह बातें हो ही रही थीं कि गुलाबो बुआ हाथ में तस्ती लिये हुए आ पहुँची ।

‘‘यह तसवीर किसकी है ?’’ उन्होंने गौर से देख कर रज़ाबी से तसवीर की तरफ़ इशारा करके मुसकराते हुए पूछा—‘‘किसी फिरंगिन की है ? मेम की ?’’

खानम इस ज़ोर से फट पड़ी कि खुदा की पनाह !—‘ग़मी बातें (भाभी जी से) जाकर किया करो । खबरदार, जो मुझ से ग़मी बातें कीं ।’

गुलाबो बुआ बढ़बढ़ाती हुई कमरे से बाहर निकल गईं ।

इतने में खरबूजे वाली आई । रोज खरबूजे बेचने आती थी । मेरी समझ में भाभी जी के कमरे में होकर आई थी, जभी तो उसको उन्होंने सिखला कर भेजा था । उसने आते ही खरबूजों की बातचीत करने के बजाय फौरन खानम की तरफ देखकर पूछा—‘यह तस्वीर किसकी है ?’

‘निकल यहाँ से,’—खानम ने आग-बबूला हो कर कहा—‘निकल यहाँ से चुड़ैल, निकल । नहीं...निकल-निकल...’

+ + + +

‘बहूजी ने मशीन की एक सुई माँगी है ।’

सुड़ कर खानम ने देखा । पड़ोस के बँगले में खानम की मुँह-बोली बहन रहती थी । उन्होंने अपने लड़के नौकर को एक सुई लेने को भेजा था ।

‘अच्छा देती हूँ ।—खानम ने कहा ।

‘यह तस्वीर किसकी है ?’—मानो उसने जवाब में कहा ।

खानम ने इस ज़ोर से एक चांटा उसके गाल पर दिया कि जब तक खानम लकड़ी तलाश करे, तब तक वह रोता हुआ भागा ।

‘अबे, सुई तो लेता जा ।’—मैंने पुकार कर कहा, मगर वह चौकड़ी भर रहा था ।

अभी खानम बड़बड़ा ही रही थी कि मामीजी के यहाँ से आयाजी आईं। वे भेजी गई थीं खानम की तबीयत का हाल पूछने; लेकिन देखिये तो मक्कार की बातें, पूछती हैं—‘यह तसवीर किसकी है?’

खानम ने एक डांट बजाई और डपट कर निकाल दिया।

‘में तो तबीयत का हाल पूछने आई थी’

चूल्हे में जाय तबीयत निकलो यहाँ से।’

आयाजी को निकाल कर अब खानम की अजीब हालत—
था। आयाजी गई ही थीं कि माली का लड़का इनाम मांगने आया। उसकी भी खबर ली गई। इन्ने धोबिन आईं, उसकी भी वही दशा हुई, जो खरबूज़ों वाली की हुई थी। उससे बाद अम्मा आई, फिर नानो आईं और उन्होंने भी आँखें मिचका कर पूछा—‘यह किसकी तसवीर है?’

दिन भर इसी हड़बोंग में कटा। शाम को जो मैं वापस आया, तो क्या देखता हूँ, एक मोटी मी लकड़ी रखी है। सब्र का प्याला भर चुका है—‘अगर अब किसी ने पूछा कि यह तसवीर किसकी है, तो उसकी खबर नहीं’—खानम ने लकड़ी दिखा कर कहा।

इत्तिफाक तो देखिये कि भाभी जी का कुत्ता टामी कमरे में आया और लगा दुम हिलाकर देखने तसवीर की तरफ। उसने दुम हिलानी बंद कर दी। ग़ौर से तसवीर की तरफ देख कर अचल हो गया—जैसे मन्नाटे में आ गया हो। देखने-देवने उसने तसवीर से आँखें हटा कर खानम की तरफ प्रश्नवाचक दृष्टि डाली ही थी कि वही लकड़ी इस ज़ोर से उसकी पीठ पर पड़ी कि दोहरा हो गया और चिन्ता-त हुआ वेताहाशा भागा—खानम उसके पीछे पीछे...

दरवाज़े के आगे झूलैदार कुर्सी में कुत्ता उल्लास... उधर से खानम... और उधर से अपने प्यारे टामी की चिल्लाहट-भरी फरियाद सुनकर भाभी जी लपकें। कुत्ता दो कूद कर निकल गया, मगर जिठानी-देवरानी में ऐसी टकर हुई कि दोनों गिरीं।

भाभी जी की गनक टूट गई, जो उन्होंने अभी अभी मुझसे मोल मंगवाई थी और जिसके दाम भी अभी तक नहीं दिये थे।

‘यह लाजिए अपनी गनक!’ भाभी जी ने टूटी हुई गनक मेरे हाथ में धर दी, गोझा अब उसके दाम न देंगी, और फिर उसके बाद...

आज तक खानम और भाभीजी में बातचीत नहीं हुई और हो कैसे? क्योंकि खानम ने कसम खा रखी है कि मैं इस तसवीर को न हटाऊँगी। भाभी जी ने कसम खा रखी है कि मैं लोगों को सिखाने पढ़ाने से बाज़ न आऊँगी। चुनावे जो आता है, यही पृथ्वी है—‘यह तसवीर किसकी है?’ और भाभी जी को देखिये कि शूटी कसम खाती हैं कि मैंने किसी को नहीं सिखाया!

चंबेली की एक कली

(१)

धर्मराज युधिष्ठिर के वंश का अन्तिम राजा क्षेमकर एक बार अपने उद्यान में टहल रहा था । साथ में सामन्त सित्र भी था । राजा भिन्न भिन्न पुष्पों की सुगन्ध का वर्णन करता जाता था । सब सुनकर सामन्त ने कहा—“राजन ! आपके इस सुविस्तृत उद्यान में पुष्प-वृत्तों का बहुत अच्छा संग्रह है सही, पर ब्रह्मगिरि पर जो चंबेली की एक कली है उसकी सुगन्ध के सामने सब तुच्छ है । वह बहुत से रोगों की दवा है । एक बार वहाँ चलकर उसे देखने में आप स्वयं उसकी प्रशंसा करने लगेंगे ।”

क्षेमकर—“क्या तुमने उसे अपनी आँखों से देखा है या लोगों के कहने-सुनने में आ गये हो ?”

सित्र—“मैं वहाँ गया था और केवल इसलिए गया था कि मेरे मस्तिष्क का विकार दूर हो जाय । मेरा रोग तो जाते ही दूर हो गया पर वहाँ मर्दानों टहरा रहा । बड़ा ही रमणीक स्थान है ।”

क्षेमकर —“तो उसका कुछ वर्णन करो ।”

सित्र —“महाराज, एक तो वह अकेला पुष्पवृत्त बहुत ऊँचे पर है, आकार-प्रकार में बहुत छोटा है । पृथ्वी से केवल पन्द्रह

अंगुल ही ऊँचा है। उसमें एक ही कली है। पर न तो वह खिलती है और न मुरझा कर गिर ही जाती है। उसमें कभी भी कोई दूसरी कली नहीं लगी और न इस समय है। उसकी सुगन्ध कोसों फैली हुई है। एक मणिधर सर्प उसकी रक्षा करता है। उसके भय से कोई भी उसके समीप नहीं जाता। उन्माद, जीर्णज्वर आदि वातक रोगों से पीड़ित रोगी उसकी सुगन्ध-मात्र से स्वस्थ हो जाते हैं”।

लेमकर — “क्या और कोई पुष्पवृक्ष वहाँ है ?”

सित्र — “जी, नहीं। बहुत दूर पर एक चम्पककुञ्ज है, पर उसमें सामान्य गन्ध के अतिरिक्त कुछ विशेषता नहीं है। सब आ जा सकते हैं। मैं भी कई बार वहाँ गया और पहरों घूमता रहा। पर मुझे उनकी सुगन्ध रुचिकर न हुई।”

लेमकर — “सित्र जी ! मैं वहाँ चलोंगा और तुम्हें भी साथ ले चलूँगा। किसी युक्ति से सर्प को मारकर उस वृक्ष को उखाड़ लाऊँगा और अपने इस उद्यान में लगा दूँगा।”

सित्र — “महाराज ! भूलकर भी ऐसा विचार मन में न लाइये। जो इस ह्रादे से वहाँ गया है उसकी मृत्यु हो गई है। जैसे आप राजाओं के राजा हैं वैसे ही वह सर्पों का राजा है, उसका वध करना असम्भव है। ब्रह्मगिरि पर जब उसकी पूजा होती है तब वह दृश्य देखने योग्य होता है। मैंने भी एक दिन नागराज की पूजा की थी। सोमवार का दिन था। उसी दिन पूजा हुआ करती है। प्रातःकाल मैंने धुस्म पर खड़े होकर प्रार्थना की ‘भगवान् ! मैं आज अपरान्ह में आपकी सपरिवार पूजा करना चाहता हूँ। मान्त्रिक के द्वारा बुलाये जाने पर अवश्य पधारें, तीसरे

पहर मिट्टी के कटोरों में दूध लावा रक्खा गया। माँत्रिक ने पनस के पत्तों को जोड़ कर गोबर की अनन्त भगवान की मूर्ति बनाई। अक्षत, चंदन, पुष्प आदि से अर्चन-वन्दन करके उसने शाबरमंत्र का उच्चारण किया। डेढ़ दो दण्ड पीछे बड़ा ही सुन्दर मणिधरनाग एक दूसरे नाग पर सवार होकर आया। उसके पीछे बहुत से नाग थे। उसके बैठने के लिए आपन सजा हुआ था। जब नागराज अपने आपन पर सवारी पर से उतर कर बैठ गया तब और सर्प भी अपने अपने आपन पर बैठे। फिर माँत्रिक की प्रार्थना पर नागराज ने दूध-लावा का आतिथ्य स्वीकार किया। जब वह दूध पीने लगा तब अन्य नाग भी पीने लगे। इस प्रकार भोजन करके जब वे संतुष्ट हुए तब माँत्रिक ने उन्हें प्रणाम करके अपने अपने स्थान को जाने के लिए प्रार्थना की। फिर जिस प्रकार वे आये थे उसी तरह चले गये।”

क्षेमकर—“अच्छा, ऐसी बात है तो मैं केवल दर्शन के निमित्त चलूँगा, तैयारी करो, मैं शुभ मुहूर्त देखकर शीघ्र वहाँ जाने का विचार करता हूँ। एक ही बात की मुझे आशङ्का है कि मेरे एक पूर्वज ने सर्प-सत्र करके इस जाती का नाश कर डाला था, कहीं नागराज मुझे उनका वंशज समझकर कुपित न हो जायँ।”

सित्र—“शिव ! शिव ! ऐसी आशंका है ! आर्य धर्मावलार ! आपके पूर्वज और उनके पूर्वज अपनी अपकीर्ति अपने अपने साथ लेते गए, अपने वंशधरों के लिये कुछ छोड़ नहीं गए। मैं तो समझता हूँ कि नागराज के मन में यह बात आणुगी ही नहीं। आप चलिए, मैं भी साथ साथ चलूँगा। उस अद्भुत दृश्य को देख तो आइये। और कुछ नहीं तो आपका हृद्दरोग ही दूर हो जायगा।”

चेमकर—“हाँ, हाँ, चलो कल ही चलो ”

सित्र—“नहीं, नहीं, इतनी जल्दी क्या है । शुभ मुहूर्त पर चलिए !”

चेमकर—“अच्छा ”

(२)

परीक्षित नगर के बाहर आक्रीड़ उत्तर सुविस्तृत मैदान में पाण्डवेन्द्र महाराजाधिराज चेमकर का दरबार लगा हुआ है । धर्माचार्य यतीन्द्र उपमन्यु जगद्गुरु के आसन पर विरजमान हैं । मंत्रि-मंडल, सातन्त-मंडल तथा पारस, खस, शक, बर्बर आदि जातियों के प्रतिनिधि भी उपस्थित हैं । राजधानी के निवासी नर—नारी सब एकत्रित हैं । राज-सिंहासन पर आसीन महाराजाधिराज चेमकर ने कहा—“सज्जनो, आज अंतिम दर्शन है । नीलाकाश के नीचे यह पृथ्वी ऐसी ही बनी रहेगी । सरिताएँ इसी तरह बहती रहेंगी । सूर्य और चंद्रमा भी इसी तरह प्रकाश और जीवनदान किया करेंगे । सब कुछ ऐसा ही रहेगा पर मैं न रहूँगा । आज से शुद्ध क्षत्रिय—वंश का अन्त है । मैंने किसी राजकुमारी का पाणि-ग्रहण इसलिये नहीं किया कि मेरे सेवा-धर्म में बाधा पहुँचेगी । मैं प्रजा का मेवक हूँ, प्रजारज्जन ही मेरा स्वाभाविक धर्म है । इसलिये मैं जीता रहा । पर अब इस जीवन का एक प्रकार से अन्त ही समझिए । हृद्रोग मेरा प्राणान्त किए बिना नहीं रहेगा । मैं ब्रह्मगिरि पर जाता हूँ । सुनते हैं कि वहाँ चंबेली की कली के प्रभाव से ऐसे रोग दूर हो जाते हैं । यदि यह रोग दूर भी हो गया तो मैं गंगातट का आश्रय लूँगा, फिर लौट-कर यहाँ नहीं आऊँगा । इसलिये मैं राज्य की व्यवस्था कर देना और आपकी सेवा में अपने अनुभव की कुछ बातें निवेदन कर देना बहुत आवश्यक समझता हूँ । इस हेतु से यह विराट आयोजन

किया है। प्रार्थना यही है कि कृपा-पूर्वक अपने मन्त्रे सेवक की विनती साग्रह और सहर्ष सुनकर हृदय में स्थान देंगे।

सुनिष्ट ! आज से सार्वभौम साम्राज्य का अन्त हो जायगा। क्योंकि अब से योगी नहीं, योगभ्रष्ट राजकुलतिलक होंगे। उनका आसन प्रजा के हृदय में न होकर पीठ पर होगा। विषय-सुख को ही सर्वोपरि समझेंगे और अपनी इन्द्रियों के स्वामी न होकर दास होंगे। कूट-नीति में ही उनकी स्वाभाविक प्रवृत्ति होगी। वे झल-कपट का व्यवहार करेंगे। सारांश यह है कि आसुरी वृत्ति ही उनमें प्रधान रहगी। वे प्रजा के सुख के लिए न जीकर अपने सुख के लिए जीएँगे। अस्तु, ऐसी दशा में, जब आध्यात्मिक शासन का पराभव हो रहा है, भौतिक शासन उपस्थित हो जायगा। अतएव मैं यही उचित समझता हूँ कि प्रजा शासन की बागडोर अपने हाथ में ग्रहण करे, अपने हितहित का स्वयं विचार करके प्रजा-संघ द्वारा समूह-शक्ति से कार्य करे। क्या कला कौशल, क्या वाणिज्य-व्यापार, क्या कर्षण और शासन-सब पर प्रजा ही का स्वतः अधिकार रहेगा। राजकुल की प्रतिष्ठा के लिये प्रजा का इतना ही कर्तव्य है कि अपनी आय का षोडशांश भूमिकर के रूप में भूपति को प्रदान करे।

हमारे दक्षिण बाहु माण्डलिक नृपतिगण ! मैं आज आपको पूर्ण रूप से स्वतंत्र करते हुए प्रजा-वर्ग को आपके हाथों में सौंपता हूँ। मैंने इन्हें बहुत प्यार किया है। 'ईति-भीति' को छोड़ कर इन्हें किसी का भय नहीं रहा है। आशा है कि आप भी इन्हीं की नींद सोयेंगे और जायेंगे। यह बात तभी सम्भव है जब आप अपने को प्रजा का सेवक समझेंगे अर्थात् जैसा मेरा भाव था वैसा ही व्यवहार करेंगे। राजनीति में विषमता क्षम्य है पर यह

कड़वा फल न तो स्वयं खाया चाहिए और न दूसरों को खिलाया ही चाहिए। आपके सुख-खिलास के लिए राजकीय खजाने का आय कुछ कम नहीं है। उसे आप अपने उपभोग में लावें, वह इसी निमित्त है। पर प्रजा से प्राप्त धन को प्रजा-हित-साधनों में ही लगावें। यही बिलीत प्रार्थना है। और एक बात। विग्रह और संधि के अवसर पर रोष, ईर्ष्या, मद और मोह के दास न होकर प्रजा के धन का उपयोग उचित परिमाण में करें। यह कभी नहीं भूलना चाहिए कि कर-रूप में प्राप्त धन प्रजावर्ग का शुद्ध रक्त है। उसे पानी की तरह बहाना महापाप है।

“लगाया प्रेम-पौधा आँसुओं से सींच कर हमने।

मेरा जीवन है भाई, आप इसको घाम मत समझें।”

प्यारे पुरजन और इन्द्रप्रस्थ मण्डलांतर्गत प्रजावर्ग ! इनने दिन सेवा करके आज आपका सेवक बिदा होना है। जो कुछ दुःख किसी प्रकार भी हुआ हो उसके लिए क्षमा करके अपना शासन आप करने के लिए कटिबद्ध हो जायें। आज से आप ही राज्य के मालिक और सेवक दोनों हैं। आप अपने में से किसी योग्य व्यक्ति को जिसमें स्वाभाविक उपकार की वृत्ति हो, जो धर्मनिष्ठ हो, इंद्रियजित हो, तपस्वी हो, धर्मनीति और राजनीति का मर्मज्ञ हो, प्रजापालन में विशेष रुचि रखता हो, जो ईश्वर को छोड़ कर और किसी से न डरता हो, जिसका जीवन अव्यवस्थित न हो, जो अवाशी न हो, ऐसे प्रमुख को राष्ट्रायक बनाइए। उसी को मेरा उत्तराधिकारी समझिए और वेद-मन्त्रों द्वारा अभिषिक्त कीजिए। उसके आचार-व्यवहार को देखते रहिए। कदाचित् वह अपने धर्म से च्युत हो जाय, तो पहले सभा करके उसे समझाइए, जब न माने तब उसे पदच्युत करके दूसरे व्यक्ति को अपना नायक बनाइए। राज-सभा का संठगन जैसा चला आता है

वैसा ही रहे, यदि आगे चलकर उसमें कुछ त्रुटि आजाय तो उसे भी आप बदल सकते हैं । राजकुल की प्रतिष्ठा के लिए इतना आप अवश्य करेंगे कि जब तक योग्य व्यक्ति मिल सकें तब तक उसी में से राष्ट्रायक निर्वाचन करेंगे । पर इसका भाव यह नहीं है कि आप में से अन्य योग्य व्यक्तियों को अवसर न दिया जाय । वे लोग उपनायक बनाये जायँ और उनकी प्रवृत्ति और प्रकृति के अनुसार उत्तरदायित्व-पूर्ण कार्य का भार उन पर डाला जाय । यदि आप उचित समझें तो उनके कार्य-काल की अवधि भी निर्धारित कर सकते हैं । अस्तु, मुझे दृढ़ विश्वास है कि आप मेरे बताए हुए मार्ग का अनुसरण करने के लिए तैयार हो जायँगे, वर्णाश्रम-धर्म रूपी सुदृढ़ प्राचीर के अन्तर्गत स्थिर जातीय दुर्ग की रक्षा समता, संतोष, दया और विवेक-रूपिणी चतुरङ्गिणी-सेना के द्वारा करते रहेंगे और गो-ब्राह्मण, साधु और सती की पुकार पर सदा कान दिये रहेंगे ।”

महाराजाधिराज क्षेमकर के उपदेश को सुनकर सभा स्तब्ध हो गई । राजा से रंक तक सब के नेत्रों में जल छलछलता आया, सम्राटा छा गया । केवल सिसकियाँ भरने की ध्वनि सुनाई देती थी । स्नेह विह्वल यवन-नरेश गुंटियोक्स ने सामने आकर, पाँच बार झुक कर वन्दना करके हाथ जोड़ कर कहा, “प्रज्ञा-रत्नक, पृथ्वीपति, अनेक विरुदावली-विराजमान ! आप सार्व-भौम साम्राज्य का अन्त करके जाते हैं; यह ठीक नहीं, आप हमें औरस उत्तराधिकारी दे कर जाइये । आप किसी राजकन्या से विवाह करें, हम सब के भाग्य से आप ही के समान आप का पुत्र [होगा, उसे गद्दी पर बिठाकर आप वन को चले जायँ; तब हमें कोई अधिकार रोकने का नहीं है । पर सोचिए तो, आप क्या कर रहे हैं ? आप सार्व-भौम एकच्छत्र साम्राज्य का अन्त कर रहे हैं, अब

माण्डलिक राज्य स्वतन्त्र होकर आपस में लड़ने लगेंगे, आप की प्यारी प्रजा पर अत्याचार होने लगेगा, सब लोग मन-मानी करने लगेंगे, निरंकुश शासन की प्रधानता हो जायगी । इसलिए मैं आग्रहपूर्वक प्रार्थना करता हूँ कि आप विवाह करें और पुत्रोत्पत्ति के अनन्तर बन को जायँ ।”

सम्राट् ने राजसिंहासन से उतर कर राजा पेंटियोकस को हृदय से लगाया और कहा—“भाई ! अब मुझे आज्ञा दो, रोको मत । जो कुछ तुम कहते हो, मैं सब समझता हूँ, पर क्या करूँ. कठिन रोग ने मुझे ऐसा करने के लिए विवश कर दिया है । सब लोग जानते हैं कि मैं पुस्तक लिख कर उसी की आय से रोटी खाता हूँ, प्रजा के धन को छूता तक नहीं, सो अब हृद्-रोग के कारण मैं कुछ देर एक जगह बैठ कर लिख पढ़ नहीं सकता, तब विवश होकर मुझे प्रजा का अन्न खाना पड़ेगा । अपनी प्रतिज्ञा भंग करनी पड़ेगी ! हाँ ब्रह्मगिरि पर जाता हूँ, यदि रोग छूट गया और कोई अन्य बाधा उपस्थित नहीं हुई, तो आप लोगों की सेवा में लौट आऊँगा । नहीं तो जो कुछ मैंने निवेदन किया है उसी के अनुसार.....” कहते-कहते सम्राट् यवन नृपति के गले से लिपट गए ।

पेंटियोकस ने कहा, “राजन् ! आप का यही त्याग तो दुर्ग-चारी को सदाचारी बनाता था, आप के सामन्तों और माण्डलिक नरेशों को अत्याचार करने एवं निरंकुश बनने से रोकता था । हाय ! हाय !! आज आध्यात्मिक रीति से, आत्मिक बल से शासन करने का युग समाप्त हुआ । हाय, अब हमें अपने चरित्र से शिक्षा देने वाला सम्राट्, सब के मन को अपनी मुट्ठी में रखने वाला राज—राजेश्वर कहाँ मिलेगा ?”

सम्राट् के नेत्रों में आँसू भर आए और वह चुपके से राज-

सभा के बाहर हो गया और अश्वाखट होकर सामन्त मित्र के साथ ब्रह्मगिरि के लिए रवाना हो गया ।

लोग बड़ी देर तक प्रतीक्षा करने रहे । जब सम्राट नहीं लौटे तब सबने यही निश्चय किया कि जब तक सम्राट रोगमुक्त होकर नहीं आते तब तक जैसे चलता है वैसे ही चलाना रहे ।

(३)

जिस रात को महाराज जेमकर ब्रह्मगिरि पर पहुँचे उसी रात में चमेली की एक कली दक्षिणानिल के प्रथम स्पर्श से ही खिल गई और इतनी सुगन्ध विस्तृत हुई कि वायु-मण्डल भर गया । दूसरे ही दिन राजा का हृद्रोग जाता रहा ! और वह प्रातःकाल बोड़े पर उस पुष्पविशेष के दर्शन के निमित्त गया । मित्र मित्र भी उसके साथ था । भुण्ड के भुण्ड सर्प स्वतन्त्रता-पूर्वक वहाँ विचर रहे थे; और वृक्ष के पास विकसित कली के ऊपर द्रुववत फन काढ़े नागराज दीख पड़े । इस भयङ्कर दृश्य को देखकर सम्राट ने सामन्त से कहा—“तुम किनारे यहीं खड़े रहो, मैं ऊपर जाता हूँ । यदि सर्प मुझे डस भी लेंगे तो कुछ परवा नहीं । मैं इसी के लिए आया हूँ ।” यह कह कर जेमकर ऊपर चढ़ गए । सामन्त एक-टक देखता ही रह गया ।

सप्तद्वीप पाण्डवेन्द्र जेमकर स्वभाव से ही निर्भीक थे । बिना आगा-पीछा सोचे धड़धड़ाते हुए चले गए । सर्पगण महाराज के लिये मार्ग छोड़ते गए । यहाँ तक कि वे वृक्ष के पास जब पहुँचे तब फणीश ने भी सिर भुकाया और दूर हट गया । राजराजेश्वर की दृष्टि पुष्प पर गड़ी हुई थी । उसने उस सौरभ-सम्पन्न पुष्प को भरपूर देखा, अच्छी तरह देखा । देखने से तृप्ति नहीं होती थी फिर मन में आया कि “इस पुष्प को तोड़लें और डेरे पर ले

चलें। देखें फिर कोई कली निकलती है या नहीं। पर नागराज यदि रुष्ट हो गये ! तब क्या करेंगे, इस ही न लेंगे। कुछ चिन्ता की बात नहीं। परिणाम चाहे जो कुछ हो, इस पुष्प को तोड़ना चाहिए।” इस प्रकार निश्चय करके उसने अपना हाथ बढ़ाया और पुष्प को तोड़ लिया पर तुरन्त ही दूसरा फूल उसमें लग गया। यह देख कर वह विस्मित हुआ और फिर उस फूल को तोड़ लिया, पर फिर दूसरा पुष्प उसमें लग गया। इस तरह उसने गिनकर एक सौ आठ फूल तोड़े, पर वृक्ष पुष्प-शून्य न हुआ। आश्चर्य यह था कि विकसित फूल की जगह ब्रंसा ही खिला हुआ फूल ही लगता था; कली नहीं। चकित और स्थिर दृष्टि से वह उस अश्रु-वृक्ष और उसमें खिले हुए एक मात्र पुष्प को कुछ देर तक निहारता रहा, फिर तोड़े हुए पुष्पों को ले कर लौटा और अपने मित्र मित्र को लेकर बातें करता हुआ डेरे पर आया। दोनों मित्रों ने मिल कर स्नान, ध्यान, भोजन-विश्राम से निवृत्त होकर उन अष्टोत्तरशत पुष्पों की एक माला तैयार की। संध्या हो चुकी थी और चंद्रोदय भी हो चुका था। मित्र की इच्छा थी कि नागराज का पूजन करके उन्हें ही यह हार अर्पण किया जाय। पर सम्राट् ज्ञेमकर उसे पुष्प वृक्ष ही पर चढ़ा देना चाहते थे। दोनों मित्रों में इस पर विवाद चल रहा था। इतने में एक बुढ़िया लकड़ी टेकती हुई आई और उसने चिल्ला कर कहा—“मेरी भोंपड़ी क्या हुई ? मुझे सूझता नहीं, कोई राम का दुलारा दया करके मुझे भोंपड़ी में पहुँचा देगा ?”

बुढ़िया के आर्त्त-स्वर को सुनकर सम्राट् की स्वाभाविक वृत्ति उदय हो गई। किसी अबला का क्रन्दन सुनकर कोई क्षत्रिय कैसे धीर रह सकता है ? वे तुरन्त उठ खड़े हुए वृद्धा के पास चले गए। सामन्त, इच्छा न रहने पर भी उसके साथ जाने के लिए विवश हुआ। ज्ञेमकर ने उसे वहीं रहने की आज्ञा दी

और स्वयं अञ्जलें गए । एक हाथ में गजरा और एक हाथ में तलवार लिए हुए वे बुढ़िया के पीछे-पीछे चले गए । निर्जन मैदान में एक वृद्ध के नीचे वह अपनी टूटी-फूटी भोंपड़ी में घुस गई । छत्रपति ने कहा —“बूढ़ी माता ! अब तुम अपनी कुटी में पहुँच गई, मैं लौट कर जाता हूँ ।”

वृद्धा—“नहीं नहीं बेटा ! भीतर चलो ।”

सम्राट् ने भीतर जाकर जो दृश्य देखा उसने उन्हें विस्मित कर दिया । न बुढ़िया का पता और न भोंपड़ी का । वहाँ तो सुन्दर उद्यान में एक किशोरी रमणी हाथ में एक कटोरा दूध और भारी में पानी लिए खड़ी थी । छिटकी हुई चाँदनी में उसका सौन्दर्य बिम्बर रहा था । उस छवि पर राजा का मन न्योछावर हो गया । सुन्दरी ने बड़े भाव से आतिथ्य की सामग्री सामने रख दी और ग्रहण करने की प्रार्थना करती हुई वह अलग खड़ी हो गई ।

क्षेमकर की दृष्टि उसकी छवि पर एक टफ लगी हुई थी । उसे कुछ सोचने-समझने का अवकाश नहीं था । पर ज्यों ही उस रमणी ने क्षीर ग्रहण करने की प्रार्थना दुबारा की त्यों ही बिना कुछ विचारे क्षेमकर ने अपने हाथ का गजरा उसके गले में डाल दिया और मन ही मन में कहने लगा—“अहो यह अपूर्व सुन्दरी यहाँ कैसे आ गई ? वृद्धा और उसकी भोंपड़ी क्या हुई ? इस ललना ने मेरे मन को हर लिया । कैसे हर लिया ? इतनी अवस्था हुई आज तक मेरा मन किसी भी रमणी के रूप का ग्राहक नहीं हुआ, फिर कैसे यह एकाएक बहक गया ? कुछ कारण समझ में नहीं आता । मैंने किसी स्त्री से सम्भाषण नहीं किया । जो इस एकान्त कुञ्ज में इमसे बातें करने के लिए

मन में लकड़ों स्पन्दन हो रहे हैं। और मेरी बेमनसो मसी कि गजरा बिना संकोच के उमड़ गले में पटना दिया। ये सब मेरे स्वभाव के विरुद्ध बाएँ क्यों हो रही हैं।” इस प्रकार विचारते हुए उसने वहीं बैठकर दुःखपात्र किया। फिर क्या था ! कामरूप नम-नम में भर गया। शरीर की प्रौढावस्था नव्य किशोरावस्था में परिवर्तित हो गई। संयम की वृत्ति बदल कर चपलता में टख गई। उसने कहा—“आपके उपहार ने मैं संतुष्ट हुआ। पर आप का परिचय जाने बिना चिरा व्यग्र है। क्या अपनी सुधामयी वाणी से इस व्यग्रता को नहीं दूर करेंगी ? मुझे बड़ा ही कौतूहल हो रहा है। अपना पूर्ण परिचय दीजिए। स्पष्ट कहिए कि आप कौन हैं ? वृद्धा मुझे यहाँ लिवा लाई थी, वह झोपड़ी समेत क्या हुई ?”

उस रमणी ने कहा—“आपको मालूम नहीं कि मैं कौन हूँ।” अब भी आप नहीं समझ सके ! अच्छा सुनिए, इस दृश्य की नटी, इस आश्चर्य-लीला की विधात्री मैं ही हूँ। आप इन्द्रजाल में फँस गए हैं, अब किसी तरह इससे निकल नहीं सकते। कहिए, अब समझा ?”

क्षेमकर—“हाँ समझा। पर इस निरपराध व्यक्ति को आपने क्यों इस जाल में फँसाया ?”

रमणी—“वे फूल तोड़े या नहीं ! बस यही अपराध है।”

क्षेमकर—“ठीक है। अपराध अवश्य हुआ, पर क्या आपके दरबार में क्षमा के लिए स्थान नहीं हैं ?”

रमणी—“है क्यों नहीं, पर अपराध अक्षम्य है, प्राणदण्ड ही इसके लिए उचित विधान है। हाँ, आप युधिष्ठिर के वंशज हैं। और क्षत्रपति नृपति हैं, इसलिए कड़ाई से नहीं, नर्म के साथ

आपको दण्ड देने का निश्चय किया है। पहला दण्ड तो यह है कि आपको भूलोक छोड़ देना होगा और अमरावती का भी त्याग करना होगा। दूसरा दण्ड यह है कि आपको पाँच बार चलि-लोचना देवी को साष्टाङ्ग प्रणाम करना होगा, क्योंकि आपने स्त्री जाति का बड़ा अपमान किया है। आशा है कि आप सब बातें समझकर मन को फड़ा कर लेंगे।”

लेमकर—“अच्छा, जो दण्ड मिलेगा उसे भुगत लेंगे। इस समय बल्लाहण कि ‘चलित-लोचना-देवी कौन हैं जिन्हें मुझे साष्टाङ्ग प्रणाम करना होगा?’”

रमणी—“बात तो बताने योग्य नहीं है, पर देखती हूँ कि बिना बताए भी काम नहीं चल सकता। अच्छा, सावधानतापूर्वक सुनिष्ठा, संक्षेप से सारी कथा कहती हूँ।—

“हेमाद्रि पर महर्षि वादरायण के शिष्य बौधायन ऋषि का आश्रम था। ऋषि ने महाप्रस्थान के समय कमलाक्ष नामक एक युवक तपस्वी को आश्रम का अधिष्ठाता बनाया। वे वहाँ रहने लगे और तपस्वी धन का सञ्चय करने लगे। तप के प्रभाव से उनका रूपवान् शरीर और भी दिव्य होगया और देवलोक की ललनाएँ आकर्षित होकर आने लगीं। पर तपस्वी ने किसी की ओर दृष्टिपात नहीं किया। निराश होकर सब लौट गईं परन्तु नागलोक की विभूति ‘चलित-लोचना-देवी’ उम तपस्वी कुमार पर ऐसी आसक्त हुई कि वह उसके सामने से टलती ही नहीं थी। मुनि ने अपने को बहुत सँभाला पर अन्त में क्रोध की वृत्ति ने उदय होकर उनके तपस्वी धर्म को नष्ट कर दिया। तपस्वी ने झुँझला कर उस देवी को स्थावर वानि में पतित होने का शाप दे दिया। भोगवती में हाहाकार मच गया। सब बहुत दुखी हुए। उनके पिता नागराज आचत्सकी के शोक का पारावार नहीं था, क्योंकि वे अपनी एकमात्र कन्या को बहुत प्यार करते थे। पर अब क्या होता? जो होना था सो तो हो ही चुका था। काल

पाकर वही चलितलोचना ब्रह्मगिरि पर चंबेली के रूप से उत्पन्न हुई और आप वही कमलान्त तपस्वी हैं जो तप के प्रभाव से राजकुल-विलक हुए हैं। यही उस अबला की करुण कथा है। अब उसके उद्धार का समय आगया है। शाण्डिल्य मुनि ने नागराज से कहा था कि “जब कमलान्त महाराजाधिराज जैमकर के रूप से ब्रह्मगिरि पर आवेगा तब उसी समय चंबेली की एकमात्र कली विकसित हो जायगी। उस समय मेरा ध्यान करना। मैं तत्काल प्रकट होकर उसका उद्धार करदूँगा”। सो नागराज ने मुनि की आराधना की है। वे सूर्योदय के अनन्तर अवश्य पधारेंगे और उस देवी का उद्धार हो जायगा। चलित-लोचना मेरी अत्यन्त प्यारी मखी है। उसी के प्रेमवश मैंने माया रचकर आपको बुलाया है और सब बातें जनादी हैं। मुझे देखकर आप का चित्त अस्थिर हो गया है और आपने प्रेमसूचक भाव भी प्रकट किए हैं। उन भावों को अपनी मखी की ओर से मैंने स्वीकार किया है और पाणिग्रहण के समय बधाई दूँगी। अब आप अपने आवास पर जाइए। आपका मित्र सामन्त मित्र बड़ी उत्कण्ठा से आप की प्रतीक्षा कर रहा है। कल सवेरे ब्रह्मगिरि पर अंकलै आइएगा। मैं वहाँ आपके स्वागत के लिए उपस्थित रहूँगी। जय अनन्त भगवान् की।”

इतना कहकर वह रनखी अनर्धान हो गई। उद्यान भी अनन्त शून्य में विलीन हो गया। सम्राट् सित्र से सिला और प्रेम कहानी कहता हुआ डेरे पर पहुँचा। रात थोड़ी रह गई थी बातें करते करते सवेरा हो गया। भटपट नित्य क्रिया से निपट कर सखा से विदा हो वह ब्रह्मगिरि पर गया। नागराज के साथ ऋषि शाण्डिल्य के दर्शन हुए। ऋषि को राजा ने बड़े प्रेम से प्रणाम किया। शाण्डिल्य ने आशीर्वाद देकर अपने दाहिने पैर के अँगूठे से उस वृक्ष के मूल को स्पर्श किया। उसी समय एक अत्यन्त रूपवती बन्धा प्रकट हो गई। राजा उस छवि को देखते ही मूर्च्छित हो

गिर पड़ा। मुनि ने उसे सावधान किया और अपने करकमलों से चलित-लोचना का हाथ छेमकर को थमा दिया और उन्हें भोगवती का मार्ग-सुख चिरकाल तक भोगने का आशीष देकर आकाश से चले गए।

फिर नागराज छेमकर को नागलोक में लिवा ले गए और वहाँ विधि-पूर्वक दोनों का विवाह-संस्कार सम्पन्न हुआ। चलित-लोचना की सखी मधुरा ने हँसकर कहा—“अब पाँच बार मेरी सखी के चरणों में प्रणाम कीजिए, तब बिहार-कुंज में प्रवेश करने देंगी।” छेमकर ने इस प्रेमहठ को स्वीकार करके ज्यों ही सिर झुकाया कि चलितलोचना चरणों पर गिर पड़ी और राजराजेश्वर ने उसे उठा कर अङ्क से लगा लिया।



वीसा

वर्तमान की कौन-सी अज्ञात प्रेरणा हमारे अतीत की किसी भूली हुई कथा को सम्पूर्ण मार्मिकता के साथ दोहरा जाती है यह जान लेना सहज होता तो मैं भी आज गांव के उस मलिन स्थल से नन्हें से विद्यार्थी की सहसा याद आ जाने का कारण बता सकती जो एक छोटी लहर के समान ही मेरे जीवन-तट को अपनी सारी आर्द्रता से छूकर अनन्त जल-राशि में विलीन हो गया है।

गंगा पार कुंभी के खंडहर और उसके आस-पास के गांवों के प्रति मेरा अकारण आकर्षण रहा है उसे देखकर ही सम्भवतः लोग जन्म-जन्मान्तर के सम्बन्ध का व्यंग्य करने लगे हैं। है भी तो आश्चर्य की बात! जिस अवकाश के समय को लोग इष्ट-मित्रों से मिलने, उत्सवों में सम्मिलित होने तथा अन्य आमोद-प्रमोद के लिए सुरक्षित रखते हैं उसी को मैं इस खंडहर और उसके क्षय-विक्षय चरणों पर पछाड़ें ग्याती हुई भागीरथी के तट पर काट ही नहीं, सुख से काट देती हूँ।

दूर पास बसे हुए, गुड़ियों के बड़े-बड़े घरौदों के समान लगने वाले कुछ लिपे-पुते कुछ जीर्ण-शीर्ण घरों से स्त्रियों का जो झुण्ड पीतल-तांबे के चमचमाते, मिट्टी के नये लाल और पुराने भदरंग बड़े लेकर गंगाजल भरने आता है उसे भी मैं पहचान गई हूँ। उनमें कोई बूटेदार लाल, कोई निरी काली, कोई कुछ सफेद और कोई मैल और सूत में अद्र्वित स्थापित करने वाली, कोई कुछ नई और कोई छेदों से छलनी बनी हुई धोती पहने रहती हैं। किसी की मोसलगी पाटियों के बीच में एक अंगुल चौड़ी सिंदूर रेखा अस्त होते हुए सूर्य की किरणों में चमकती रहती है और किसी की कढ़वे नेल में भी अशिक्षित रखी जटा बनी हुई छोटी-छोटी लटे मुख को

घेर कर उसकी उदासी को और अधिक केंद्रित कर देती हैं। किसी को मांगली गोल कलाई पर शहर की कच्ची नगदार चूड़ियों के नग रह-रह कर हारे से चमक जाते हैं और किसी की दुर्बल काली लाव की पीली मैली चूड़ियों काले पत्थर पर मटमैले चन्दन की मोटी लकीरें जान पड़ती हैं। कोई अपने गिल्ट के कड़े-युक्त हाथ घड़े की श्रोट में छिपाने का प्रयत्न-सा करती रहती है और कोई चांदी के पछेली-ककना की झनकार के ताल के साथ ही बात करती है। किसी के कान में लाव की पैसे वाली नरकी धोती से कभी-कभी झांक भर लेती है और किसी को ढारें लम्बी जंजीर से गला और गाल एक करती रहती हैं। किसी के गुदना गुदे गेहूँ पैसे में चांदी के कड़े सुडौल की परिधि-सी लगते हैं और किसी की फैली उँगलियों और मफेट्ट पड़ियों के साथ मिली हुई स्याही रांग और फांसे के कढ़ों को लोहे की साफ की हुई बेड़ियां बना देती हैं।

वे सब पहले हाथ-मुँह धोती हैं फिर पानी में कुछ घुस कर घड़ा भर लेती हैं—तब घड़ा फिनारें रख पिर पर इँडुरी ठीक करती हुई मेरी ओर देख कर कभी मलिन, कभी उजली, कभी दुःख की व्यथा-भरी, कभी सुख की कथा-भरी मुस्कान से मुस्करा देती हैं। अपने मेरे बीच का अन्तर उन्हें जाता है—जहाँ कदाचित् वे इस मुस्कान के सेतु से उसका द्वार-पार जोड़ना नहीं भूलतीं।

गवालों के बालक अपनी चरती हुई गाय अँसों में से किसी को उस ओर बहकते देखकर ही लकड़ी लेकर दौड़ पड़ते हैं, गड़रियों के बच्चे अपने कुंड की एक भी बकरी या भैंस को उस ओर बढ़ते देखकर कान पकड़ कर खींच ले जाते हैं और व्यर्थ दिन भर गिल्ला-डंडा खेलने वाले मिठल्ले लड़के भी बीच-बीच में नज़र बचाकर मेरा स्वर देखना नहीं भूलते।

उस पार शहर में दूध बेचने जाते या लौटते हुए गवाले किले में काम करने जाते या घर आते हुए मजदूर, नाव बांधते या खोलते हुए मल्लाह

कभी-कभी 'चुनरीत रेगाउव लात मत्रीरी हो' गीत गाते मुझ पर दृष्टि पड़ने ही यह चकाकर बुर हो जाते हैं। कुछ विशेष सम्बन्ध होने का गर्व करने वालों से मुझे एक सलज्ज नमस्कार भी प्राप्त हो जाता है।

कह नहीं सकती कब और कैसे मुझे उन बालकों को कुछ सिखाने का ध्यान आया। पर जब बिना कार्यकारिणों के निर्वाचन के, बिना पदाधिकारियों के चुनाव के, बिना भवन के, बिना चंदे की अपील के और माराश यह कि बिना किसी चिर-परिचित समारोह के मेरे विद्यार्थी पीपल के पेड़ की घनी छाया में मेरे चारों ओर एकत्र हो गये तब मैं बड़ी कठिनाई से गुरु के उपयुक्त गम्भीरता का भार वहन कर सकी।

और वे जिज्ञासु कैसे थे सो कैसे बताऊँ ! कुछ कानों में बालियाँ और हाथ में कड़े पहने धुले कुरते और ऊँची मैली धोती में नगर और ग्राम का मिश्रण जान पड़ते थे; कुछ अपने बड़े भाई का पाँव एक लम्बा कुरता पहने हुए खेतों में डराने के लिए खड़े किये हुए नकली आदमी का स्मरण दिलाते थे; कुछ उभरी पसलियों, बड़े पेट और टेढ़ी दुर्बल दाँगों के कारण अनुमान से ही अनुम्य-संज्ञा पर भाषा में आ सकते थे और कुछ अपने दुर्बल, रुखे और मलिन पुत्रों की कठण मौखिकता और निग्रह पीली आँखों में संसार भर की अपेक्षा बटोरे बैठे थे। पर धीमा उनमें अँखला ही रहा और आज भी मेरी स्मृति में अँखला ही आता है।

वह गोधूली मुझे अब तक नहीं भूली। मन्थ्या के लाल सुनहली आभा वाले उड़ते हुए दुःख पर शत्रु ने मानो छिप कर अंजन की मूँट चला दी थी। मेरा नाव जाता कुछ विनित्य-मा लहरों की ओर दंग रहा था; बड़ी भक्तिन मेरी किताबें, कागज-कलम आदि संभाल कर नाव पर रख कर बड़े अन्धकार पर विभ्रला कर बुदबुदा रही थी या मुझे कुछ मनकी बनाने वाले विधाता पर, यह समझना कठिन था। बेचारी मेरे साथ रहते-रहते दस लम्बे वर्ष काट आई है, नौकरानी से अपने आत्मको एक प्रकार की अस्थि

भाविका मानने लगी है, परन्तु मेरी सनक का दुष्परिणाम सहने के अति-रिक्त उसे क्या मिला है ! सहसा समता से मेरा मन भर आया, परन्तु नाव की ओर बढ़ते हुए मेरे पैर, फैलते हुए अन्धकार में से एक स्त्री-मूर्ति को अपनी ओर आता देख ठिठक रहे । साँवले कुछ लम्बे-से मुखड़े में पल्ले स्याह ओट कुछ अधिक स्पष्ट हो रहे थे । आँखें छोटी, पर व्यथा से आर्द्र थीं । मलिन बिना किनारी की गाढ़े की धोती ने उसमें सल्फर रक्त अंगों को भलीभाँति ढँक लिया था, परन्तु तब भी शरीर की सुडौलता का आभास मिल रहा था । कंधे पर हाथ रखकर वह जिस दुर्बल अर्धनग्न बालक को अपने पैरों से चिपकाए हुए थी उसे मैंने मन्थ्या के झुटपुटे में ठीक से नहीं देखा ।

स्त्री ने रुक-रुक कर कुछ शब्दों और संकेतों में जो कहा उससे मैं केवल यह समझ सकी कि उसके पति नष्ट हैं, दूसरों के घर लीपने-पोतने का काम करने वह चली जाती है और उसका यह अपेक्षा लड़का ऐसा ही धूमता रहता है । मैं इसे भी और बच्चों के साथ बैठने दिया कहीं तो यह कुछ तो सीख सके । दूसरे इत्वार को मैंने उसे सब से पीछे अकेले एक ओर दुबक कर बैठे हुए देखा । पकारांग पर गठन में और अधिक सुडौल मलिन मुख जिसमें दो पीली पर सन्ध्या आँखें जड़ी-मी जान पड़ती थीं । कम कर बन्द किये हुए पल्ले होठों की दृढ़ता और गिर पर खड़े हुए छोटे-छोटे रुखे बालों की उग्रता उसके मुख की संकोच-भरी कोमलता से विद्रोह कर रही थी । उभरी हुई हड्डियों वाली गर्दन को सँभाले हुए झुके कन्धों से, रक्तहीन मटमैली हथेलियों और टेढ़े-मेढ़े कटे हुए नाखूनों युक्त हाथों वाली पतली बांहें ऐसी झूलती थीं जैसे डामा में विष्णु बनने वाले की दो नकली भुँजाएँ । निरन्तर दौड़ते रहने के कारण उस लचीले शरीर में दुबले पैर ही विशेष पुष्ट जान पड़ते थे । — वस ऐसा ही था वह वीसा । न नाम में कवित्व की गुञ्जाइश न शरीर में ।

पर उसकी सचेत आँखों में न जाने कौन-सी जिज्ञासा भरी थी। वे निरन्तर घड़ी की तरह खुली मेरे मुख पर टिकी ही रहती थीं। मानो मेरी सारी विद्या-बुद्धि को सोख लेना ही उनका ध्येय था।

लड़के उससे कुछ खिंचे-खिंचे से रहते थे। इसीलिए नहीं कि वह कोरी था वरन् इसलिए कि किसी की मां, किसी की नानी, किसी की बुआ आदि ने घोसा से दूर रहने की नितान्त आवश्यकता उन्हें कान पकड़-पकड़ कर समझा दी थी।—यह भी उन्होंने ने बताया और बताया घोसा के सब से अधिक कुरूप नाम का रहस्य। बाप तो जन्म से पहले ही नहीं रहा। घर में कोई देखने-भालने वाला न होने के कारण मां उसे बेंदरिया के बच्चे के समान चिपकाये फिरती थी। उसे एक और लिटा कर जब वह मजदूरी के काम में लग जाती थी तब पेट के बल घसिट-घसिट कर बालक संसार के प्रथम अनुभव के साथ-साथ इम नाम की योग्यता भी प्राप्त करता जाता था।

फिर धीरे-धीरे अन्य रित्रयां भी मुझे आते-जाते रोक कर अनेक प्रकार की भावभंगिमा के साथ एक विचित्र सांकेतिक भाषा में घोसा की जन्म-जात अयोग्यता का परिचय देने लगीं। क्रमशः मैंने उसके नाम के अति-रिक्त और कुछ भी न जाना।

उसका बाप था तो कोरी, पर बड़ा ही अभिमानी और भला आदमी बनने का इच्छुक। डलिया आदि बुनने का काम छोड़कर वह थोड़ी बड़ई-गीरी सीख आया और केवल इतना ही नहीं, एक दिन चुपचाप दूसरे गाँव से युवती वधू लाकर उसने अपने गाँव की सब सजातीय सुन्दरी बालिकाओं को उपेक्षित और उनके योग्य माता-पिता को निराश कर डाला। मनुष्य इतना अन्याय सह सकता है, परन्तु उसे अदसर पर भगवान की असहिष्णुता प्रसिद्ध ही है। इसी से जब गाँव के चौखट किवाड़ बनाकर और ठाकुरों के घरों में सफेदी करके उसने कुछ ठाट-बाट से रहना आरम्भ किया तब अचानक हैजे के बहाने वह वहाँ बुला लिया गया जहाँ न जाने का बहाना

न उसकी बुद्धि सोच सकी न अभिमान। पर स्त्री भी कम गर्विली न निकली। गांव के अनेक विधुर और अविवाहित कोरियों ने केवल उदारता-वश ही उसकी जीवन-नैया पार लगाने का उत्तरदायित्व लेना चाहा, परन्तु उसने केवल कोरा उत्तर ही नहीं दिया। प्रत्युत उसे नमक मिर्च लगा कर तीता भी कर दिया। कहा 'हम सिंध के मेहरारू होइके का सियारन के जाव।' और बिना स्वर-ताल के आंसू गिरा कर, बाल खेल कर, चूड़ियाँ फोड़कर और बिना किनारे की धोती पहन कर जब उसने बड़े घर की विधवा का स्वांग भरना आरम्भ किया तब तो सारा समाज क्षोभ के समुद्र में डूबने उतराने लगा। उस पर घीसा बाप के मरने के बाद हुआ है। हुआ तो वास्तव में छः महीने बाद, परन्तु उस समय के सम्बन्ध में क्या कहा जाय जिसका कभी एक क्षण वर्ष सा बीता है और कभी एक वर्ष क्षण हो जाता है। इसी से वह छः मास का समय खबर की तरह बिंच कर एक साल की अवधि तक पहुँच गया तो इसमें गांव वालों का क्या दोष।

यह कथा अनेक लेपकोमय विस्तार के साथ सुनाई तो गई थी मंत्रा मन फेरने के लिए और मन पिरा भी, परन्तु किसी सुनातन नियम से कथावाचकों की और न फिर कथा के नायकों की ओर फिर गया और इस प्रकार घीसा मेरे और अधिक निकट आ गया। वह अपना जीवन-सम्बन्धी अपवाद कदाचित् पूरा नहीं सम्भ्रम पाया था, परन्तु अधूरे का भी प्रभाव उस पर न था क्योंकि वह सब को अपनी छाया से इस प्रकार बचाता रहता था मानो उसे कोई छूत की बीमारी हो।

पढ़ने, उसे सबसे पहले सम्भ्रमे, उसे व्यवहार के समय स्मरण रखने, पुस्तक में एक भी धब्बा न लगाने, रलैट को चमचमाती रखने और अपने छोटे-से-छोटे काम का उत्तरदायित्व बड़ी गम्भीरता से निभाने में उसके समान कोई चतुर न था। इसी से कभी-कभी मन चाहता कि उसकी माँ से उसे माँग ले जाऊँ और अपने पास रख कर उसके विकास की उचित व्यवस्था कर दूँ—परन्तु उस उपेक्षिता पर मानिनी विधवा का

वही एक सहारा था। वह अपने पति का स्थान छोड़ने पर प्रस्तुत न होगी यह भी मेरा मन जानता था और उस बालक के बिना उसका जीवन कितना दुर्बल हो सकता है यह भी मुझमें छिपा न था। फिर नौ साल के कर्णव्यपरायण घोसा की गुरु-भक्ति देख कर उसकी मातृ-भक्ति के सम्बन्ध में कुछ सन्देह करने का स्थान ही नहीं रह जाता था और इस तरह घोसा वहीं और उन्हीं कठोर परिस्थितियों में रहा जहाँ क्रूरतम नियति ने केवल अपने मनो-दिनोद के लिए ही उसे रख दिया था।

राजेश्वर के दिन ही वह अपने छोटे दुर्बल हाथों से पीपल की छायी को गोबर-मिट्टी से पीला चिकनादन दे जाता था। फिर इतवार को मां के मजदूरी पर जाते ही एक मैले फटे कपड़े में बंधी मोटी शोटी और कुछ नमक या थोड़ा चन्देना और एक डली गुड़ बगल में दबाकर, पीपल की छायी को एक बार फिर भाड़ने बुहाड़ने के पश्चात् वह गंगा के तट पर आ बैठता और अपनी पीली सतेज आँखों पर लीण साँवले हाथ की छायी कर दूर-दूर एक दृष्टि को दौड़ाता रहता। जैसे ही उसे मेरी नीली सफेद नाव की झलक दिखाई पड़ती वैसे ही वह अपनी पाल्खी टांगों पर जीर के समान उड़ता और बिना नाम लिए हुए ही साथियों को सुनाने के लिए गुरु साहब गुरु साहब कहता हुआ फिर पेड़ के नीचे पहुँच जाता जहाँ न जाने कितनी बार दुहराये-बिहराये हुए कार्यक्रम की एक अन्तिम आवृत्ति आवश्यक हो उठती। पेड़ की नीची डाल पर खी हुई मेरी शीतलपाटी उतार कर बारम्बार भाड़ पोंछ कर बिछड़ई जाती, कभी काम न आने वाली सूखी स्याही से काली कच्चे कांच की दायात अपने टूटे निब और उखड़े हुए रंगवाले भूरे कमल के साथ पेड़ के कोटर से निकाल कर यथारथान रख दी जाती और तब इस चित्र पाठशाला वा द्विचित्र मंत्री और निराला विद्यार्थी कुछ आगे बढ़ कर मेरे सप्रणाम स्वागत के लिए प्रस्तुत हो जाता।

महीने में चार हो दिन में वहाँ पहुँच सकती थी और कभी-कभी

काम की अधिकता से एक-आध छुट्टी का दिन और भी निकल जाता था, पर उस थोड़े से समय और इने-शिने दिनों में भी मुझे उस बालक के हृदय का जैसा परिचय मिला वह चित्रों के एल्बम के समान निरन्तर नवीन या लगता है ।

मुझे आज भी वह दिन नहीं भूलता जब मैंने बिना कपड़ों का प्रबन्ध किये हुए ही उन बेचारों को सफाई का महत्व समझाते समझाते थका डालने की मूर्खता की । दूसरे इत्वार को सब जैसे कंठ में ही सामने थे—केवल कुछ गंगा जी में मुँह इस तरह धो आये थे कि मैंने अनेक रेखाओं में विभक्त हो गया था; कुछ ने हाथ पाँव ऐसे धोये थे कि शेष मलिन शरीर के साथ में अलग जोड़े हुए से लगते थे और कुछ 'न रहेभा बांस न बजेगी बांसुरी का कहावत' चरितार्थ करने के लिए कीट से मैले फटे कुरते घर ही छोड़ कर ऐसे अस्थिपंजरमय रूप में आ उपस्थित हुए थे जिसमें उनके प्राण, रहने का आश्चर्य है गये अचम्भा कान' की घोषणा करते जान पड़ते थे । पर धीसा गायब था । पूछने पर लड़के काना-फूँसी करने या एक साथ सभी उसकी अनुपस्थिति का कारण सुनने को आतुर होने लगे । एक-एक शब्द जोड़-तोड़ कर समझाना पड़ा कि धीसा मां से कपड़ा धोने के साबुन के लिए अभी से कह रहा था—मां को मजदूरी के पैसे मिले नहीं और दुकानदार ने नाज लेकर साबुन दिया नहीं कल रात को मां को पैसे मिले और आज सबेरे वह सब काम छोड़ कर पहले साबुन लेने गई । अभी लौटी है, अतः धीसा कपड़े धो रहा है क्योंकि गुरु साहब ने कहा था कि नहा धोकर साफ कपड़े पहन कर आना । और अभागों के पास कपड़े ही क्या थे ! किसी दयावती का दिया हुआ एक पुराना कुरता, जिसकी एक आस्तीन आधी थी और एक अंगोछा जैसा फटा टुकड़ा । जब धीसा नहा कर गीला अंगोछा ही लपेटे और आधा भीगा कुरता पहने अपराधी के समान मेरे सामने आ खड़ा हुआ तब आँखें ही नहीं मेरा रोम-रोम

गिला हो गया। उस समय समझ में आया कि द्रोणाचार्य ने अपने भील शिष्य से अँगूठा कैसे कटवा लिया था।

एक दिन न जाने क्या सोच कर मैं उन विद्यार्थियों के लिए १-६ सेर जलेबी ले गईं पर कुछ तौलने वाले की सफाई में, कुछ तुलवाने वाले की समझदारी से और कुछ वहाँ की छीना-झपटी के कारण प्रत्येक को पांच से अधिक न मिल सकीं। एक कहता था मुझे एक कम मिली, दूसरे ने बताया मेरी अमुक ने छीन ली, तीसरे को घर में सोते हुए छोटे भाई के लिए चाहिए, चौथे को किसी की और याद आ गई। पर इस कोलाहल में अपने हिस्से की जलेबियाँ लेकर घीमा कहाँ खिसक गया यह कोई न जान सका। एक नटखट अपने साथी से कह रहा था 'सार एक ठो पिलवा पाले है ओही को देय गवा होई' पर मेरी दृष्टि से संकुचित होकर चुप रह गया। और तब तक घीमा लौटा ही। उसका सब हिसाब ठीक था—जलखई वाले छन्ने में तीन जलेबियाँ लपेट कर वह भाई के लिए छप्पर में खोस आया है, एक उसने अपने पाले हुए, बिना मां के, कुत्ते के पिल्ले को खिला दी और दो स्वयं खा लीं। और चाहिये पूछने पर उसकी संकोचभरी आंखें मुक गईं—ओठ कुछ हिले। पता चला कि पिल्ले को उससे कम मिली हैं। दें तो गुरु साहब पिल्ले को ही एक और दें दें।

और होली के पहले की एक घटना तो मेरी स्मृति में ऐसे गहरे रंगों से अंकित है जिनका भुल सकना सहज नहीं। उन दिनों हिन्दू-मुस्लिम वैमनस्य धीरे-धीरे बढ़ रहा था और किसी दिन उसके चरम सीमा तक पहुँच जाने की पूर्ण संभावना थी। घीसा दो सप्ताह से ज्वर में पड़ा था—दवा में भेजवा देती थी परन्तु देख-भाल का कोई ठीक प्रबन्ध न हो पाता था। दो चार दिन उसकी मां स्वयं बैठी रही फिर एक अन्धी बुढ़िया को बैठा कर काम पर जाने लगी।

इतवार की सांझ को मैं यथाक्रम बच्चों को विदा दे घीसा को

देखने चली परन्तु पीपल से पचास पग पहुँचते न पहुँचते उसी को डग-मगाते पैरों पर गिरते-पड़ते अपनी ओर आते देख मेरा मन उद्विग्न हो उठा। वह जो इधर पन्द्रह दिन से उठा ही नहीं था अतः मुझे उसके मन्निपात-ग्रस्त होने का ही सन्देह हुआ। उसके सूखे शरीर में सरल विद्युत्-सी दौड़ रही थी, आँखें और भी मतेज और मुख ऐसा था जैसे हल्की आँच में धीरे-धीरे लाल होने वाला लोहे का टुकड़ा।

पर उसके बाल-ग्रस्त होने से भी अधिक चिन्ता-जलफ उसकी समझदारी की कहानी निकली। वह प्यास से जाग गया था पर पानी पाम मिला नहीं और अन्धी मनियाँ की आजी से माँगना ठीक न समझ कर वह चुपचाप कट्ट सहने लगा। इतने में मुल्लू के कक्का ने पार से लौट कर दरवाजे से ही अन्धी को बताया कि शहर में दंगा हो रहा है और तब उसे गुरु साहब का ध्यान आया। मुल्लू ने कक्का कहते ही वह ऐसे हौले-हौले उठा कि बुढ़िया को पता ही न चला और कभी दीवार और कभी पेड़ का सहाग लेता-लेता वह इस ओर भागा। अब वह गुरु साहब के जोड़ धर कर यहीं पड़ा रहेगा पर पार किसी तरह भी न जाने देगा।

तब मेरी समस्या और भी जटिल हो गई। पार जो मुझे पहुँचना था ही पर साथ ही बीमार धीसा को ऐसे समझा कर जिससे उसकी स्थिति और गम्भीर न हो जाय। पर सदा के संकोची नम्र और आज्ञाकारी धीसा का इस छद् और दृष्टी बालक में पता ही न चलता था। उसने पारसाल ऐसे ही अवसर पर हताहत दो मलाह देखे थे और कदाचित् इस समय उसका रोग से विकृत मस्तिष्क उन चित्रों में और गहरा रंग भर कर मेरी उलझन को और उलझा रहा था पर समझाने का प्रयत्न करते-करते अचानक ही मैंने एक ऐसा तार नू दिया जिसका स्वर मेरे लिये भी नया था। यह सुनते ही कि मेरे पास रेल में बैठ कर दूर-दूर से आये हुए बहुत-से विद्यार्थी हैं जो अपनी माँ के पास साल भर में एक

वार ही पहुँच पाते हैं और जो मेरे न जाने से अकेले घबरा जायेंगे, घोसा का सारा हठ सारा विरोध ऐसे बह गया जैसे वह कभी था ही नहीं।—और तब घोसा के समान तर्क की क्षमता किममें थी ! जो साँझ को अपनी माई के पास नहीं जा सकते उनके पास गुरु साहब को जाना ही चाहिए। घोसा रोकेगा तो उसके भगवानजी गुस्सा हो जायेंगे क्योंकि वे ही तो घोसा को अंदला बेकार दृमवा देखकर गुरु साहब को भेज देते हैं आदि आदि। उसके तर्कों का स्मरण कर आज भी मन भर आता है। परन्तु उस दिन मुझे आपत्ति से बचाने के लिए अपने बुखार से जलते हुए अशक्त शरीर को घसीट लाने वाले घोसा को जब उसकी टूटी खटिया पर लिटा कर मैं लौटी तब मेरे मन में कौतूहल की मात्रा ही अधिक थी।

इसके उपरान्त घोसा अच्छा हो गया और धूल और सूखी पत्तियों को बांध कर उन्मत्त के समान घूमने वाली गर्मी की हवा से उसका रोज संग्राम छिड़ने लगा—झाड़ते-झाड़ते वही पाठशाला धूल-धूसरित होकर, भूरे, पीले और कुछ हरे पत्तों की चादर में छिप कर, तथा कंकाल शेष शाखाओं में उलझते, सूखे पत्तों को पुकारते, वायु की संतप्त सरसर ने मुखरित होकर उस भ्रान्त बालक को चिढ़ाने लगती। तब मैंने तीसरे पहर से सन्ध्या समय तक वहाँ रहने का निश्चय किया परन्तु पता चला घोसा किम-किसाती आँखों को मलता और पुस्तक से बराबर धूल झाड़ता हुआ दिन भर वहीं पेड़ के नीचे बैठा रहता है मानो वह किसी प्राचीन युग का तपोव्रती अनागारिक ब्रह्मचारी हो जिसकी तपस्या भंग करने के लिये ही लू के भोंके आते हैं।

इस प्रकार चलते-चलते समय ने जब दाईं छूने के लिए दौड़ते हुए बालक के समान झपट कर उस दिन पर उँगली धर दी जब मुझे उन लोगों को छोड़ जाना था तब तो मेरा मन बहुत ही अस्थिर हो उठा। कुछ बालक उदास थे और कुछ खेलने की छुट्टी से प्रसन्न। कुछ

जानना चाहते थे कि हृदयों के दिन चूने की टिकियां रखकर गिने जायें या कोयले की लकीरें खींचकर। कुछ के सामने बरसात में चूते हुए घर में आठ पृष्ठ की पुस्तक बचा रखने का प्रश्न था और कुछ कागजों पर अकारण ही चूहों की समस्या का समाधान चाहते थे। ऐसे महत्वपूर्ण कोलाहल में धीसा न जाने कैसे अपना रहना अनावश्यक समझ लेता था अतः सदा के समान आज भी मैंने उसे न खोज पाया। जब मैं कुछ चिन्तित-सी वहां से चली तब मन भारी-भारी हो रहा था, आँखों में कोहरा-सा घिर आता था। वारत्तव में उन दिनों डाक्टरों को मेरे पेट में फोड़ा होने का सन्देह हो रहा था—आपरेशन की सम्भावना थी। कब लौटूँगी या नहीं लौटूँगी यही सोचते-सोचते मैंने फिर कर चारों ओर जो आर्द्र दृष्टि डाली वह कुछ समय तक उन परिचित स्थानों को भेंट कर वहीं उलझी रही।

पृथ्वी के उच्छ्वास के समान उठते हुए धुंधलेपन में वे कच्चे घर आकर ठमस हो गए थे—वेदल फूस के मटमैले और खपरैल के कथई और काले छप्पर, वर्षा में बढ़ी गंगा के मिट्टी जैसे जल में पुरानी नावों के समान जान पड़ते थे। कछार की बालू में दूर तक फैले तरबूज के खेत अपने सिरकी और फूस के मुठियों, टट्टियों और रखवाली के लिए बनी परकुटियों के कारण जल में बसे किसी आदिम द्वीप का स्मरण दिलाते थे। उनमें एक-दो दिण जल चुके थे तब मैंने दूर पर एक छोटा-सा काला धब्बा आगे बढ़ता देखा। वह धीसा ही होगा यह मैंने दूर से ही जान लिया। आज गुरु साहब को उसे विदा देना है यह उसका नन्हा हृदय अपनी पूरी संवेदन-शक्ति से जान रहा था इसमें सन्देह नहीं था। परन्तु उस उपेक्षित बालक के मन में मेरे लिए कितनी सरल ममता और मेरे विद्योह की कितनी गहरी व्यथा हो सकती है यह जानना मेरे लिए शेष था।

निकट आने पर देखा कि उस धूमिल गोधूली में बादामी कागज पर काले चित्र के समान लगनेवाला नंगे बदन धीसा एक बड़ा तरबूज दोनों

हाथों में सन्हाले था जिसमें बीच के कुछ कटे भाग में से भीतर की डेप-
नचय ललाई चारों ओर के गहरे हरे-पन में कुछ ग्विले कुछ बन्द गुलाबों
फूल जैसी जान पड़ती थी ।

घोसा के पास न पैसा था न खेत—तब क्या वह इसे चुग लाया है !
मन का सन्देह बाहर आया ही और तब मैंने जाना कि जीवन का खरा मोना
छिपाने के लिए मलिन शरीर को बनाने वाला ईश्वर बस बूढ़े आदमी
से भिन्न नहीं जो अपनी सोने की मोहर को कचो मिट्टी की दीवार में
रखकर निश्चित हो जाता है । घोसा गुरु साहब से झूट बोलना भगवान्
जी से झूट बोलना समझता है वह तरबूज कई दिन पहले देव आया था ।
माई के लौटने में न जाने क्यों देर हो गई तब उसे थोड़े खेत पर जाना
पड़ा वहाँ खेत वाले का लड़का था जिसकी उम्र नये कुरते पर बहुत
दिन से नजर थी । प्रायः मुना-मुना कर कहता था कि जिनकी भूख जूटी
पत्तल से बुझ सकती है उनका लिए परोसा लगाने वाले पागल होते हैं ।
उसने कहा पैसा नहीं है तो कुरता दे जाओ । और घोसा आज तरबूज न
लेता तो कल उमका क्या करता । इससे कुरता दे आया —पर गुरु
साहब को चिन्ता करने की आवश्यकता नहीं क्योंकि गर्मी में यह कुरता
पहनना ही नहीं और जाने-आने के लिए पुराना टीक रहेगा । तरबूज
मफेद न हो इस लिए कटवाना पड़ा —मीठा है या नहीं यह देखने के
लिए उँगली से कुछ निकाल भी लेना पड़ा ।

गुरु साहब न लें तो घोसा रात भर रोयेगा —छुट्टी भर रोयेगी,
ले जायें तो वह रोज नहा धोकर पेड़ के नीचे पड़ा हुआ पाठ दोहराता
रहेगा और छुट्टी के बाद पूरी किताब पढ़ी पर लिख कर दिवा संभालेगा ।

और तब अपने स्नेह में प्रगल्भ उन बालक के फिर पर हाथ रख
कर मैं भावभिरक से ही निश्चल हो रही । उस लट पर किमी गुरु को
शिष्य से कभी ऐसा दक्षिणा मिली होगी ऐसा मुझे विश्वास नहीं

परन्तु उस दक्षिणा के सामने संसार के अब तक के सारे आदान-प्रदान फीके हो गये ।

फिर घीसा के सुख का विशेष प्रबन्ध कर मैं बाहर चली गई और लौटते-लौटते कई महीने लग गये । इस बीच में उसका कोई समाचार न मिलना ही सम्भव था । जब फिर उस ओर जाने का मुझे अवकाश मिल सका तब घीसा को उस व. भगवान् जी ने सदा के लिए पढ़ने से अवकाश दे दिया था — आज वह कहानी दोहराने की मुझमें शक्ति नहीं है पर सम्भव है आज कल, कल के कुछ दिन, दिनों के मास और मास के वर्ष बन जाने पर मैं दार्शनिक के समान धीरे-धीरे से उस जीवन का उपेक्षित अन्त बना सकूँगी । अभी मेरे लिए इतना ही पर्याप्त है कि अन्य मलिन सुखों में उसका छाया डूँढती रहूँ ।

पिंजरा

शान्ति ने ऊबकर कागज के टुकड़े-टुकड़े कर दिये और उठ कर अपने-मनी-सी कमरे में घूमने लगी। उसका मन स्वस्थ नहीं था, लिखते-लिखते उसका ध्यान पेंट जाता था। केवल चार पंक्तियाँ वह लिखना चाहती थी, पर वह जो कुछ लिखना चाहती थी उसमें लिखा न जाता था। भाववेश में कुछ का कुछ लिख जानी थी। छः पत्र वह फाड़ चुकी थी, यह साक्षात् था।

घूमते-घूमते, वह चुपचाप गिड़की में जा खड़ी हुई। मन्द्या का सूरज दूर पश्चिम में डूब रहा था। माली ने क्यारियों में पानी छोड़ दिया था और दिन भर के मुरभाये फूल जैसे जीवन-दान पाकर मग्न उठे थे। हल्की-हल्की ठंडी हवा चलने लगी थी। शान्ति ने दूर सूरज की ओर निगाह दौड़ाई—पीली-पीली मुनहरी फिरणें, जैसे डूबने से पहले-उन छोटे-छोटे बच्चों के खेल में जो भर हिस्सा ले लेना चाहती थीं जो सामने के मैदान की हरी-भरी घास पर उन्मुक्त खेल रहे थे। मड़क पर दो कमीन युवतियाँ, हँसती चुहलें करतीं, उड़ती-कूदती चली जा रही थीं। शान्ति ने एक दीर्घ निश्वास छोड़ा और मुड़कर उसने अपने इर्दगिर्द एक शकी हुई निगाह दौड़ाई—छत पर बड़ा पंखा घूमता आधाज ने अनवरत चल रहा था। दरवाजों पर भारी पर्दे हिल रहे थे और भारी कौच और उन पर रखे हुए रेशमी गद्दे, गलीचे और दरम्यान में रखे हुए छोटे-छोटे अठकोने मेज और उन पर पीतल के नन्हें-नन्हें हाथी और फूलदान—और उसने अपने-आप को उस पत्नी-सा महसूस किया, जो विशाल, स्वच्छंद आकाश के नीचे, खुली स्वतन्त्र हवा में आम की डाली से बँधे हुए पिंजरे में लटक रहा हो।

तभी नौकर उसके छोटे लड़के को जैने बराम खींचता-मा लाया। घोड़ी की लड़की के साथ वह खेल रहा था। आग देखा न ताव और शान्ति ने लड़के को पीट दिया—क्यों तू उन कमीनों के साथ खेलता है, क्यों खेलता है तू ! इतने बड़े बाप का बेटा होकर ! और उसकी आवाज चीख की हद को पहुँच गई। हैरान-से खड़े नौकर ने बढ कर जबर्दस्ती बच्चे को छुड़ा लिया। शान्ति जाकर धम से कौच में धँस गई और उसकी आँखों से अनायास ही आँसू बह निकले !

तब वहीं बैठे-बैठे उसकी आँखों के सामने अतीत के कई चित्र फिर गये

उसके पति तब लांडरी का काम करते थे। बाईबिल सोसाइटी के सामने जहाँ आज एक दन्दानमाज बड़े धड़ल्ले से लोगों के दाँत उखाड़ने में निमग्न रहते हैं, उनकी लांडरी थी। आग अच्छी थी, पर खर्च भी कम न था। ३२ रुपया तो दुकान का किराया ही देना पड़ता था और फिर कपड़े धोने और सूखने के लिए जो तबेला लें रखा था, उसका किराया अलग था। इसके अतिरिक्त धोबियों को वेतन, कोयले, मसाला और सौ दूमरे पचड़े ! इस सब खर्च की व्यवस्था के बाद जो थोड़ा बहुत बचता था, उससे बड़ी कठिनाई के साथ घर का खर्च चलता था और घर उन्होंने दुकान के पीछे ही महीलाल स्ट्रीट में लें रखा था।

महीलाल स्ट्रीट जैसी अब है वैसी ही तब भी थी। मकानों का रूप यद्यपि इन दस वर्षों में कुछ बदल गया है, किन्तु मकानों में कुछ अधिक अन्तर नहीं आया। अब भी इस इलाके में कमीन बसते हैं और तब भी बसते थे। सील-भरी अँधेरी कोठरियाँ चमारों, धीवरों और शुद्ध हिन्दुओं का निवासस्थान थीं। एक ही कोठरी में रसोई, बैठक, शयन-गृह—और वह भी ऐसा, जिसमें मास-ससुर, बेटा-बहू, लड़कियाँ-लड़के, सब एक साथ सोते हों।

त्रिय मकान में शान्ति रहती थी, उसके नीचे टेंडी चमार अपने आठ लड़के-लड़कियों के साथ रहता था, दूसरी चौड़ी गली में मारवाड़ी की दूकान थी और जिधर दरवाजा था, उधर भंगी रहते थे। उनके दरवाजे ने जग ही परे भंगियों ने तंदूर लगा रखा था जिसका धुआँ सुबह शाम उनकी रसोई में आ जाता करता था, जिससे शान्ति को प्रायः रसोई की खिड़की बन्द रखनी पड़ती थी। दिन-रात वहाँ चारपाइयाँ बिछी होती थीं और कपड़ा बचाकर निकलना प्रायः असम्भव होता था।

गर्मियों के दिन थे और म्यूनिस्मिपैलिटी का दल काफी दूर अनारकली के पास था, इसलिए गरीब लोगों का सहायक के ख्याल में शान्ति उसे पति की मिफारिश पर नीचे डेवटा के नल से उन्हें पानी लेने की इजाजत दे दी थी। किन्तु जब उन्हें उस मकान में आये कुछ दिन बीते तो शान्ति को मालूम हो गया कि यह उदारता बड़ी संहता पड़ेगी। एक दिन जब उसके पति गहाने के बाद साबुन की डिबिया नीचे ही भूल आये और शान्ति उसे उठाने गई तो उसने उसे बदमाश पाया, फिर कुछ दिन बाद जलिया गायब हो गया, और इस तरह दूसरे-तीसरे कोई न कोई चीज भुग होने लगी। हार कर एक दिन शान्ति ने अपने पति के पीछे पड़कर नल की टेंटी पर लकड़ी का छोट्टा सा बक्स लवावा दिया और चाबी उसकी अपने पास रख ली।

दूसरे दिन, जब एक धोती से शरीर ढाँपे वह पसीने में निचुड़ती हुई, चूल्हे के आगे बैठी रोटी की व्यवस्था कर रही थी तो उसने अपने सामने एक काली-सी लड़की को खड़ा पाया।

लड़की उसकी समवयस्क ही थी। रंग बसका बेहद काला था और शरीर पर उसने अत्यन्त मैली-कुचैली धोती और बंडी पहन रखी थी। वह अपने गहरे काले बालों में सरसों ही का तेल डालती होगी क्योंकि उसका स्मक पर बालों के नीचे पसीने के कारण तेल में मिला हुई मैल

की एक रेखा बन रही थी। चौड़ा-सा मुँह और चपटी नाक ! शान्ति-मी के हृदय में क्रोध और घृणा का तूफान उमड़ आया। आज तक घर में जमादारिन के अतिरिक्त नीचे रहने वाली किसी कमील लड़की को ऊपर आने का साहस न हुआ था और न स्वयं ही उसने किसी से बात चीत करने की कोशिश की थी।

लड़की मुस्करा रही थी, और उसकी आँखों में विचित्र सी चमक थी।

क्या बात है — जैसे आँखों ही आँखों में शान्ति ने क्रोध से पूछा। तनिक मुस्कराते हुए लड़की ने प्रार्थना की कि बीबी जी पानी लेना है।

‘हमारा नल भंगी-चमारों के लिए नहीं !’

‘हम भंगी हैं न चमार !’

‘फिर कौन हो ?’

‘मैं बीबी जी, सामने के मंदिर के पुजारी की लड़की, ...।’

लेकिन शान्ति ने आगे न सुना था। उसे लड़की से बातें करते-करते घिन आती थी। धोती के छोर से चाबी खोल कर उसने फेंक दी। इस काले-कलूटे शरीर में दिल काला न था। और शीघ्र ही शान्ति को इस बात का पता चल गया। रोज ही पानी लेने के बवस की चाबी के लिए गोमती आती। गली में धूँधियों का जो मंदिर था, वह उसके पुजारी की लड़की थी। अमीरों के मंदिरों के पुजारी भी मोटरों में घूमते हैं। यह मंदिर था गरीब धूँधियों का, जिनमें प्रायः सब चौकीदार, चपरासी, साईंस अथवा मजदूर थे। पुजारी का कुटुम्ब भी खुली गली के एक ओर भंगियों की चारपाइयों के सामने सोता था। और जब रात को कोई तांगा उधर गुजरता तो प्रायः किसी न किसी की चारपाई उसमें साथ घिसटती हुई चली जाती। मंदिर में कुआँ तो था, पर जब से इधर नल आया उसपर डाल और रस्सी कनो ही रही और फिर जब समीप ही किसी की डेढ़ड़ी के बल से पानी मिल जाय तो कुएँ पर बाजू लोड़ने का क्या

जरूरत है, इसलिए गोमती पानी लेने और कुछ पानी लेने के बहाने बातें करने रोज ही सुबह-शाम आ जाती। बटरही वस्तु के बीसे रख कर जिसमें सदैव पान के कुछ पत्ते लैरा करते, वह ऊपर चली जाती और फिर बातों-बातों में भूल जाती कि वह पानी लेने आई है और उस समय तक न उठती। जब तक उसकी बुढ़िया दाढ़ी गली में अपनी चारपाई पर बैठी हुई चीख-चीख कर गालियां देती हुई उसे न पुकारती।

इसका यह मतलब नहीं, कि इस बीच में शान्ति और गोमती में मित्रता हो गई थी। हाँ इतना अवश्य हुआ कि शान्ति जब रमोई में खाना बनाती अथवा अन्दर कमरे में बैठी कपड़े मीती, तो उसको गोमती का सीढ़ियों में बैठ कर बातें करते रहना बुरा नहीं लगता था। कई तरह की बातें होतीं—मुहल्ले के भण्डियों की बातें, चमारों के घरेलू झगड़ों की बातें और फिर कुछ गोमती की निजी बातें। इस बीच में शान्ति को मालूम हो गया कि गोमती का विवाह हुए वर्षों बीत चुके हैं, पर उसने अपने पति की सूरत नहीं देखी ! बेकार है, इसलिए न वह उसे लेने आता है और न उसके पिता उसे उसके साथ भेजते हैं।

कई बार छेड़ने की गर्ज से या कई बार केवलमात्र आनन्द लेने की गर्ज से ही शान्ति उसके पति के सम्बन्ध में और उसके मनोभावों के सम्बन्ध में प्रश्न पूछती। उत्तर देते समय गोमती शर्मा जाती थी।

किन्तु इतना सब होते हुए भी उसकी जगह वहीं सीढ़ियों में ही बनी रही।

फिर किस प्रकार पुजारी की वह काली-कल्टी लड़की वहाँ से उठकर उसके इतने समीप आ गई कि शान्ति ने एक बार अनायास आलिंगन में लेकर कह दिया—आज ते तुम मेरी बहन हुई गोमती—वह सब आज भी शान्ति को स्मरण था।

सदियों की रात थी और अन्तःकली में सब ओर धुआँ-धुआँ हो रहा

था। ऐसा प्रतीत होता था जैसे लाहौर के समस्त तंदूरों, होटलों, घरों और कारखानों से सारे दिन उठनेवाले धुएँ ने संकट होते ही इकट्ठे होकर अनारकली पर आक्रमण कर दिया हो। शान्ति अपने नन्हें को कंधे से लगाए, हाथों में कुछ हल्के-फुल्के लिफाफे थामे क्रय-विक्रय करके चली आ रही थी। वह कई दिन के अनुरोध के बाद अपने पति को इधर ला सकी थी और उन्होंने जी भर खाया-पिया और खरीद किया था। अनारकली के मध्य बंगाली रसगुल्लों की जो दुकान है, वहाँ से रसगुल्ले खाने को शान्ति का बड़ा मन होता था, पर उसके पति को कभी इतनी फुर्सत ही न हुई थी कि वहाँ तक सिर्फ रसगुल्ले खाने के लिए जा सकें। अस्पताल रोड के सिरे पर हलवाई के साथ चाट वाले की जो दुकान है वहाँ से चाट खाने की शान्ति की बड़ी इच्छा थी, पर चाट ऐसी निकम्मी चीज़ खाने के लिए काम छोड़कर जाने का अवकाश शान्ति के पति के पास कहाँ? कई दिनों से वह अपने उम्मी के लिए कुछ गर्म कपड़ों के टुकड़े खरीदना चाहती थी। सर्दी बढ़ रही थी और उसके पास एक भी कोट न था। और फिर गर्म कपड़ा न मही, वह चाहती थी कि कुछ ऊन ही मोल ले ली जाय, ताकि नन्हें का स्वेटर बुन दिया जाय। पर उसके पति 'हूँ, हाँ' करके टाल जाते थे, किन्तु उस दिन वह निरन्तर महीने भर तक अनुरोध करने के बाद उन्हें अपने साथ अनारकली ले जाने में सफल हुई थी। और उस दिन उन्होंने जी-भर बंगाली के रसगुल्ले और चाट वाले की चटपटी चाट खाई थी, बल्कि धलुएँ में मोहन के पकौड़े और मटरों वाले आलुओं के स्वाद भी चखे थे। फिर उम्मी के लिए कपड़ा भी खरीदा था और उन भी मोल ली थी और दो आने दर्जन प्लेडोंवाली गुडवोग की डिविया तथा एक कालगोट साबुन की दो आने वाली टिकिया उसके पति ने भी खरीदी थी। कई दिनों से वे उन्हीं पुराने प्लेडों के ग्लास में तेज करके नहाने वाले साबुन ही से हजामत बनाते आ रहे थे और उस दिन शान्ति ने यह सब खरीदने के लिए उन्हें बस विवश कर दिया था। और दोनों जने यह सब खरीद कर खर्च करने के आनन्द की अनुभूति से पुलकित

चले आ रहे थे ।

दिसम्बर का महीना था और सूखा जाड़ा पड़ रहा था । शान्ति ने अपने सस्ते पर गरम शाल को नन्हें के गिर्द और अच्छी तरह लपेटते हुए अचानक कहा—निगोड़ा सूखा जाड़ा पड़ रहा है । सुनती हूँ नगर में बीमारी फैल रही है ।

पर उसके पति चुपचाप धुएँ के कारण कड़वी हो जाने वाली अपनी आँखों को रुमाल से मलते चले आ रहे थे ।

शान्ति ने फिर कहा—हमारी अपनी गली में कई लोग बीमार हो गये हैं परसों टेंडी चमार का लड़का निमोनिया से मर गया ।

तभी शाल में लिपटा-लिपटा बच्चा-हल्के हल्के दो बार खांसा और शान्ति ने उसे और भी अच्छी तरह शाल में लपेट लिया ।

उसकी बात को सुनी-अनसुनी करके उसके पति ने कहा—आज बेहद बदपरहेज़ी की है, पेट में सख्त गड़बड़ी हो रही है ।

घर आकर शान्ति ने जब लड़के को चारपाई पर लिटाया और मस्तक पर हाथ फेरते हुए उसके बालों को पिछली तरफ किया तो वह चौककर पीछे हटी । उसने डरी हुई निगाहों से अपने पति की ओर देखा । वे सिर को हाथों में दबाए नाली पर बैठे थे ।

उम्मी का माथा तो तबे की तरह तप रहा है—उसने बड़ी कठिनाई से गले को अचानक अवरुद्ध कर देने वाली किसी चीज़ को बर-बस रोक कर कहा ।

लेकिन उसके पति को कै हुई ।

शान्ति का कण्ठ अवरुद्ध-सा होने लगा था और उम्मी आँखें भर-सी आई थीं, पर अपने पति को कै करते देख बच्चे का खयाल छोड़ वह उनकी ओर भागी । पानी लाकर उनको कुल्ला कराया । निदाल-से हो कर वे चारपाई पर पड़ गए पर कुछ ही क्षण बाद उन्हें फिर कै हुई ।

शान्ति के हाथ पांव फूल गए। घर में वह अकेली। सास, माँ पास नहीं, कोई दूसरा नाता-रिश्ता भी समीप नहीं और नौकर—नौकर रखने की गुँजाइश ही कभी नहीं निकली। वह कुछ क्षण के लिए घबरा गई। एक उड़ी-उड़ी-सी दृष्टि उसने अपने ऊपर से तपते हुए बच्चे और बदहजमी से निटाल पति पर डाली। अचानक उसे गोमती का ख्याल आया। शान्ति अकेली कभी गली में नहीं उतरी थी, पर सब संकोच छोड़ वह भागी-भागी नीचे गई। अपनी कोठरी के बाहर, गली की ओर, ईंटों के छोटे-से पर्दे की ओट से बने हुए, रसोईघर में गोमती रोटी बेल रही थी और चूल्हे की आग से उसका काला मुख चमक-सा रहा था। शान्ति ने देखा—उसका बड़ा भाई अभी खाना खाकर उठा है। तब आगे बढ़कर उसने इशारे से गोमती को बुलाया। तबे को नीचे उतार और लकड़ी को बाहर खींच कर गोमती उसी तरह भागी आई। तब विनीत भाव से संक्षिप्त में शान्ति ने अपने पति तथा बच्चे की हालत का उल्लेख किया और फिर प्रार्थना की कि वह अपने भाई से कहकर तत्काल किसी डाक्टर को बुला दे। उनकी लांडरी के साथ ही जिस डाक्टर की दुकान है, वह सुना है पास ही लाज रोड पर रहता है, यदि वह आजाय तो बहुत ही अच्छा हो। और फिर साड़ी के छोर से पांच रुपये का एक नोट खोल शान्ति ने गोमती के हाथ में रख दिया कि फीस पहले ही क्यों न देनी पड़े पर डाक्टर को ले अवश्य आये। और फिर चलते-चलते उसने यह भी प्रार्थना की कि रोटी पकाकर सम्भव हो तो तुम ही जरा आजाना, उम्मी... ।

शान्ति का गला भर आया था। गोमती ने कहा था।—आप घबरायें नहीं, मैं अभी भाई को भेज देती हूँ और मैं भी अभी आई और यह कह कर वह भागती-सी चली गई थी।

शान्ति वापिस मुड़ी, तो सीढ़ियाँ चढ़ते-चढ़ते उसने महसूस किया कि शंका और भय से उसके पांव कांप रहे हैं और उसका दिल

धक-धक कर रहा ।

ऊपर जाकर उसने देखा—उसके पति ऊपर से उतर रहे हैं । हाथ में एक खाली लोटा है, चेहरा पहले से भी पीला हो गया है, और माथे पर पसीना छूट गया है ।

शान्ति के उड़े हुए चेहरे को देखकर उन्होंने हँसने का प्रयत्न करते हुए कहा—घबराओ नहीं, सर्दियों में हैजा नहीं होता ।

शान्ति ने रोते हुए कहा—आप ऊपर क्यों गये, वहीं नाली पर बैठ जाते । किन्तु जब पति ने नाली की ओर और फिर चारपाई पर पड़े हुए बीमार बच्चे की ओर इशारा किया, तो शान्ति चुप हो गई । उसने पहले सहारा देकर पति को बिस्तर पर लिटाया फिर नाली पर पानी गिराया फिर दूसरे कमरे में बिस्तर बिछा, बच्चे को उस पर लिटा आई । तभी गोमती आ गई । खाना तो सब खा चुके थे, अपने हिस्से का आटा उठा आग बुझा, वह भाग आई थी ।

शान्ति ने कहा—मैं उम्मी को उधर कमरे में लिटा आई हूँ । मुझे डर है उसे सर्दी लग गई है सांस उसे और भी कठिनाई से आने लगी है । और खाँसी बढ़ गई है । निचली कोठरी में पड़े हुए पुराने लिहाफ से कपड़े ले लो और अँगोठी में कोयले डाल उसकी छाती पर जरा उससे सेंक दो । इनफ पेट में गड़बड़ है । मैं इधर इसका कुछ उपचार करती हूँ । कुछ नहीं तो गरम पानी करके बोतल ही फेरती हूँ ।

गोमती ने कहा...इन्हें बीबी जी कोई हाजमे की चीज़ दो । हमारे घर तुम्मे की अजवाइन है मैं उसमें से कुछ लेती आई हूँ, जब तक डाक्टर आये उसे ही जरा गरम पानी से इन्हें दे दो ।

बिना किसी तरह की हिचकिचाहट के शान्ति ने मैली सी पुडिया में बँधी काली सी अजवाइन ले ली थी । और गोमती अँगोठी में कोयले डाल नीचे कपड़े लेने भाग गई थी ।

बाहर शाम बढ़ चली थी। वहीं कमरे के अँधेरे में बैठे-बैठे शान्ति को आँखों के आगे चिन्ता और फिक्र के वे सब दिन-रात फिर गये। उनके पति को हैजा तो न था किन्तु गैस्ट्रो एन्टेराइटिस (Gastro enteritis) तीव्र किस्म का था। डाक्टर के आने तक शान्ति ने गोमती के कहने पर उन्हें तुम्मे की अजवाइन दी थी, प्याज भी सुँघाया था और गोमती अँगोठी उठाकर दूसरे कमरे में बच्चे की छाती पर सेंक देने चली गई थी। डाक्टर के आने पर मालूम हो गया था कि उसे जिमोनिया हो गया है और अन्यन्त सावधानी की आवश्यकता है।

शान्ति अपने पति और बच्चे, दोनों की एक साथ कैसे तीमारदारी करती, उसने अपनी विवशता से गोमती की ओर देखा था। पर उसे थोड़ा हिलाने की जरूरत न पड़ी थी, बच्चे की सेवा शुश्रूषा का समस्त भार गोमती ने अपने कंधों पर ले लिया था। शान्ति को मालूम भी न हुआ था कि वह कब घर जाती है, कब घरवालों को खाना खिलाती है खाती भी है या नहीं। उसने तो जब देखा उसे छाया की भोंति बच्चे के पास पाया। कई दिन तक एक ही जून खाकर गोमती ने बच्चे की तीमारदारी की थी।

दोपहर का समय था, उसके पति दूकान पर गये हुए थे। उम्मी को भी अब आराम था और वह उनकी गोद से लगा सोया पड़ा था और उसके पास ही फर्श पर टाट बिछाये, गोमती पुराने ऊन के धागों से स्वेटर बुनना सीख रही थी। इतने दिनों की थकी-हारी उनींदी शान्ति की पलकें धीरे-धीरे बन्द हो रही थीं। वह उन्हें खोलती थी पर वे फिर बन्द हो-हो जाती थीं। आखिर वह वैसे ही पड़ी-पड़ी सो गई थी। जब वह फिर उठी तो उसने देखा, उम्मी रो रहा है, और गोमती बड़े प्यार से सुरीली आवाज में थपक-थपक कर लोरी दे रही है। शान्ति ने फिर आँखें बन्द कर लीं, उसने सुना गोमती धीमे-धीमे स्वर से गा रही थी।

आरी कक्को, जा री कक्को, जंगल पक्को बेर !

भय्या हाथे देला, चिड़ैया उड़े जा !

और फिर ।

आरी चिड़ैया ! दो पप्पड़ा पकाए जा !

भय्या हाथे देला, चिड़ैया उड़े जा !

बच्चा चुप कर गया था । लोरी खत्म करके उसने बच्चे को गले से लगाकर चूम लिया, शान्ति ने अर्ध-निमीलित आँखों से देखा बच्चे के पीले जर्द सूखे से मुख पर गोमती का काला स्वस्थ मुख भुका हुआ है । मुख के आँसू उसकी आँखों में उमड़ आये । उसने उठ कर गोमती से बच्चे को ले लिया था और जब वह फिर टाट पर बैठने लगी थी तो दूसरे हाथ से शान्ति ने उसका हाथ पकड़ चारपाई पर बिठाते हुए उसे अपने बाजू से बांध लिया था और कहा था—आज से तुम मेरी बहिन दुई गोमती ।

आँखें बंद किये शान्ति इन्हीं स्मृतियों में गुम थी, उसकी आँखों से चुप चाप आँसू बह रहे थे कि अचानक उसके पति अंदर दाखिल हुए । किसी जमाने में लांडरी चलाने वाले और समय पड़ने पर, स्वयं अपने हाथ से इस्त्री गरम करके कपड़ों को प्रेस करने में भी हिचकिचाहट न महसूस करने वाले ला० दीनदयाल और लाहौर की प्रसिद्ध फर्म 'दीन दयाल एन्ड सन्स' के मालिक प्रख्यात शेयर ब्रोकर लाला दीनदयाल में महान अंतर था । इस दस वर्ष के अरसे में उनके बाल यद्यपि पक गये थे; किन्तु शरीर कहीं अधिक स्थूल हो गया था । ढीले-ढाले और प्रायः लांडरी के मालिक होते हुए भी मैले कपड़े पहनने की जगह अब उन्होंने अत्यन्त बढ़िया किस्म का रेशमी सूट पहन रखा था और पाँवों में स्वेत रेशमी जुराब तथा काले हल्के सेंडल पहने हुए थे ।

शान्ति ने झट रुमाल से आँखें पोंछ लीं ।

बिजली का बटन दबाते हुए उन्होंने कहा—यहाँ अंधेरे में क्या

पड़ी हो। उठो बाहर बाग में वृमो-फिरो और फिर बोले इन्द्रानी का क्रोन आया था कि वहिन यदि चाहें तो आज सिनेमा देखा जाय।

वहिन—दिल ही दिल में विषाद से शांति मुस्कराई और उसके सामने एक ओर काली-कल्टी-सी लड़की का चित्र खिंच गया जिसे कभी उसने वहिन कहा था; किन्तु प्रकट उसने सिर्फ इतना—कहा मेरी तबीयत ठीक नहीं !

मुँह फुलाए हुए ला० दीनदयाल बाहर चले गये।

तब आँखों को फिर एक बार पोंछ कर और तनिक स्वस्थ होकर शांति मेज के पास आई और कुर्सी पर बैठ, पैड अपनी ओर को खिसका। फलम उठा कर उसने लिखा—

वहिन गोमती।

तुम्हारी वहिन अब बड़ी बन गई है। बड़े आदमी की बीबी है। बड़े आदमियों की बीवियाँ अब उसकी बहनें हैं। पिंजरे में बंद पत्नी को कब इजाजत होती है कि वह स्वच्छन्द, स्वतन्त्र विहार करने वाले अपने हमजोलियों से मिले? मैंने तुम्हें कल फिर आने के लिए कहा था, पर अब तुम कल न आना। अपनी इस बंदिनी वहिन को भूलने की कोशिश करना।

शान्ति

इस बार उसने एक पंक्ति भी नहीं काटी और न कागज ही फाड़ा हों एक बार लिखते-लिखते फिर आँखें भर आने से जो एक-दो आँसुओं की बूंदें पत्र पर अनायास ही गिर पड़ी थीं उन्हें उसने ब्लार्टिंग पेपर से सुखा दिया था। फिर पत्र को लिफाफे में बन्द करके उसने नौकर को आवाज़ दी और उसके हाथ में लिफाफा देकर कहा कि महीलाल स्ट्रीट में पूर्वियों के मन्दिर के पुजारी की लड़की गोमती को दे आये। और फिर समझते हुए कहा—गोमती, कुछ ही दिन हुए अपनी ससुराल से आई है।

पत्र लेकर नौकर चला ही था कि शान्ति ने उसे फिर आवाज़ दी और

पत्र उसके हाथ से लेकर फाड़ डाला। फिर धीरे से उसने कहा—तुम गोमती से कहना कि बीबी अचानक आज मैके जा रही हैं और दो महीने तक वापिस न लौटेंगी।

यह कहकर वह फिर खिड़की में जा खड़ी हुई और अस्त हो जाने वाले सूरज के स्थान पर ऊपर की ओर बढ़ते हुए अंधेरे को देखने लगी।

बात इतनी ही थी कि आज दोपहर को जब वे ब्रिज खेल रहे थे तब नौकर ने आकर खबर दी थी कि महीलाल स्ट्रीट के पुजारी की लड़की गोमती आई है। तब खेल को बीच ही में छोड़कर, और भूलकर कि उसके पार्टनर रायसाहब लाला बिहारीलाल हैं, वह भाग गई थी और उसने गोमती को अपनी भुजाओं में मीच लिया था और फिर वह उसे अपने कमरे में ले गई थी तब दोनों बहुत देर तक अपने दुःख-सुख की बातें करती रही थीं। शान्ति ने जाना था कि किस प्रकार गोमती का पति काम करने लगा, उसे ले गया और उसे चार बच्चों की माँ बना दिया और गोमती ने उम्मी का और दूसरे बच्चों का हाल पूछा था। ला० दीनदयाल इस बीच में कई बार बुलाने आये थे; पर वह न गई थी और जब दूसरे दिन आने का वादा लेकर उसने गोमती को विदा किया था तो उसके पति ने कहा था—तुम्हें शर्म नहीं आती, उस उजड़ु और गँवार औरत को लेकर तुम बैठी रहों, तुम्हें मेरी इज्जत का जरा भी ख्याल नहीं। उसे बगल में लिए उन सब के सामने से गुजर गईं। रायसाहब और उनकी पत्नी हँसने लगे और आखिर प्रतीक्षा कर-करके चले गये.....।

इसके बाद उन्होंने और भी बहुत कुछ कहा था, लेकिन शान्ति ने तो फैसला कर लिया था कि वह पिंजरे को पिंजरा ही समझेगी और उड़ने का प्रयास न करेगी।

जाह्नीव

जैनेन्द्रकुमार

आज तीसरा रोज़ है।—तीसरा नहीं, चौथा रोज़ है। वह इतवार की छुट्टी का दिन था। सवेरे उठा और कमरे से बाहर की ओर भांका तो देखता हूँ, मुहल्ले के एक मकान की छत पर काँत्रों-काँत्रों करते हुए काँत्रों से घिरी हुई एक लड़की खड़ी है। खड़ी-खड़ी बुला रही है, 'काँत्रो आँत्रो, कौँत्रो आँत्रो।' कौँ बहुत काफी आ चुके हैं; पर और भी आते जाते हैं। वे छत की मुँडेर पर बैठे अधीरता से पंख हिलाकर बेहद शोर मचा रहे हैं। फिर भी उन कौँत्रों की संख्या से लड़की का मन जैसे भरा नहीं है। बुला रही है, 'काँत्रो आँत्रो, कौँत्रो आँत्रो।'

देखते-देखते छत की मुँडेर कौँत्रों से बिल्कुल काली पड़ गई। उनमें से कुछ अब उड़-उड़कर लड़की की धोती से जा टकराने लगे। कौँत्रों के खूब आ घिरने पर लड़की मानो उन आमंत्रित अतिथियों के प्रति गाने लगी—

‘कागा चुन चुन खाइयो...।’

गाने के साथ उसने अपने हाथ की रोटियों में से तोड़-तोड़कर नन्हें-नन्हें टुकड़े भी चारों ओर फेंकने शुरू किये। गाती जाती थी। ‘कागा चुन चुन खाइयो...।’ ‘वह मग्न मालूम होती थी और अनायास उसकी देह थिरक कर नाच सी आती थी। कौँ चुन-चुन खा रहे थे और वह गा रही थी—‘कागा चुन चुन खाइयो...।’

आगे वह क्या गाती है, कौँत्रों की कौँ २ और उनके पंखों की फड़-फड़ाहट के मारे साफ सुनाई न दिया। कौँ लपक-लपककर मानो दूटने से पहले उसके हाथों से टुकड़ा छीन ले रहे थे। वे लड़की के चारों ओर

एसे छा रहे थे मानो वे प्रेम से उसको ही खाने को उद्यत हों। और लड़की कभी इधर कभी उधर झुक कर घूमती हुई ऐसे लीन भाव से गा रही थी कि जाने क्या मिल रहा हो।

रोटी समाप्त होने लगी। कौण भी यह समझ गए। जब अन्तिम टुकड़ा हाथ में रह गया तो वह गाती हुई उस टुकड़े को हाथ में फहराती हुई जोर से दो-तीन चक्कर लगा उठी। फिर उसने वह टुकड़ा ऊपर आसमान की ओर फेंका—‘कौओ खाओ, कौओ खाओ और बहुत से कौण एक-ही साथ उड़कर उसे लपकने भपटे। उस समय उन्हें देखती मानो आनन्द में चीखती हुई-सी आवाज में गा उठी—

‘दो नैना मत खाइयो’ मत खाइयो’...

पीउ मिलन की आस।’

रोटियाँ खत्म हो गईं। कौण उड़ चले। लड़की एक-एककर उनको उड़कर जाता हुआ देखने लगी। पल-भर में छत कोरी होगई। अब वह आसमान के नीचे अटली अपनी छत पर खड़ी थी। बहुत से मकानों की बहुत सी छतें थीं। उन पर कोई न होगा, कोई न होगा। पर लड़की दूर अपने कौओं को उड़ते जाते हुए देखती रह गई। गाना समाप्त हो गया था। धूप अभी फूटी ही थी। आसमान गहरा नीला था। लड़की के ओंठ खुले थे, दृष्टि स्थिर थी। जाने, भूली-सी वह क्या देखती रह गई थी।

थोड़ी देर बाद उसने मानो जगकर अपने आस-पास के जगत को भी देखा। इसी की राह में क्या मेरी ओर भी देखा? देखा भी हो, पर शायद मैं उसे नहीं दीखा था। उसके देखने में सचमुच कुछ दीखता ही था, यह मैं कह नहीं सकता। पर कुछ ही पल के अनन्तर वह मानो वर्तमान के प्रति, वास्तविकता के प्रति, चेतन हो आई। तब फिर बिना देर लगाए चट-चट उतरती हुई वह नीचे अपने घर में चली गई।

मैं अपनी खिड़की में खड़ा-खड़ा चाहने लगा कि मैं भी देखूँ, कौण कहीं उड़ रहे हैं, और वे कितनी दूर चले गए हैं। क्या वे कहीं दीखते भी हैं? पर मुश्किल से मुझे दो-एक ही कौण दीखे, वे निरर्थक भाव से यहाँ बैठे थे, या यहाँ उड़ रहे थे वे मुझे मूर्ख और धिन्धोने मालूम हुए उनकी काली देह और काली चोंच मन को बुरी लगी। मैंने सोचा कि 'नहीं, अपनी देह में कौओं से नहीं चुनवाऊँगा। छिः चुन-चुनकर इन्हीं के खाने के लिए क्या मेरी देह है? मेरी देह और कौण!—छी।'

जान पड़ता है खड़े-खड़े मुझे काफी समय खिड़की पर हो गया; क्योंकि इस बार देखा कि ढेर के ढेर कपड़े कंधे पर लादे वही लड़की फिर उम्मी छत पर आ गई है। इस बार वह गाती नहीं है, वहाँ पड़ी एक खाट पर उन कपड़ों को पटक देती है और फिर उन कपड़ों में से एक-एक को चुनकर, फटककर, वहाँ छत पर सुखा देती है। छोटे-बड़े उन कपड़ों की गिनती काफी रही होगी। वे उठाए जाते रहे, फटके जाते फैलाए जाते रहे; पर उनका अन्त शीघ्र आता न दीखा। आखिर सब खत्म हो गए तो लड़की ने मिर पर आए हुए धोती के पल्ले को पीछे किया। उसने एक अंगड़ाई ली, फिर मिर को जोर से हिला कर अन्तर्धे अपने बालों को छिटका लिया और धीमे-धीमे वहाँ डोलकर उन बालों पर हाथ फेरने लगी। कभी-कभी बालों की लट को सामने लाकर देखती फिर उम्मी को लापरवाही से पीछे फेंक देती। उसके बाल गहरे काले थे और लम्बे थे। मालूम नहीं उसे अपने इस वैभव पर सुख था या दुख था। कुछ देर वह उंगलियाँ फेर-फेर कर अपने बालों को अलग अलग छिटकाती रही। फिर चलते-चलते एकाएक उन सब बालों को इकट्ठा समेट कर झटपट जूड़ा-सा बांध, पल्ला सिर पर खींच, वह नीचे उतर गई।

इसके बाद मैं खिड़की पर नहीं ठहरा। घर में छोटी साली आई

हुई है। इसी शहर के दूसरे भाग में रहती है और व्याह न करके कालिज में पढ़ती है। मैंने कहा—‘सुनो, यहाँ आओ।’

उसने हँस कर पूछा—‘यहाँ कहाँ?’

खिड़की के पास आकर मैंने पूछा—‘क्यों जी जानहूवी का मकान जानती हो?’

‘जाह्नवी ! क्यों, वह कहाँ है?’

‘मैं क्या जानता हूँ कहाँ है। पर देखो, वह घर तो उसका नहीं है?’

उसने कहा—‘मैंने घर नहीं देखा। इधर उसने कालिज भी छोड़ दिया है।’

‘चलो अच्छा है’ मैंने कहा और उसे जैसे जैसे टालता। क्योंकि वह पूछने लाछने लगी थी कि क्या काम है, जानहूवी को मैं क्या और कैसे और क्यों जानता हूँ? सच यह था कि मैं रत्ती भर इस नहीं जानता था एक बार अपने ही घर में इसी साली की कृपा और आग्रह पर एक निगाह एक को देखा था। बताया गया था कि वह जानहूवी है, और मैंने अनायास स्वीकार कर लिया था कि अच्छा, वह जानहूवी होगी। उसके बाद की सचाई यह है कि मुझे कुछ नहीं मालूम कि उस जानहूवी का क्या बन गया और क्या नहीं बना। पर किसी सचाई को बहनोई के मुँह से सुन कर स्वीकार कर ले तो साली क्या। तिस पर सचाई ऐसी कि नीरस। पर ज्यों-त्यों मैंने उसे टाला।

बार-बार मैंने कहना भी नहीं चाहा कि ऐसी ही तुम जानहूवी को जानती हो, ऐसी ही तुम साथ पड़ती थी कि जरा बात पर कह दो ‘मालूम नहीं।’ लेकिन मैंने कुछ कहा नहीं।

इसके बाद सोमवार हो गया, मंगलवार हो गया और आज बुध भी हो कर षष्ठा का जा रहा है। चौथा रोज़ है। हर रोज़ सबेरे खिड़की पर दीखता

है कि काँए काँव-काँव, छीन झपट वर रहे हैं और वह लड़की उन्हें रोटी के टुकड़ों के मिस कह रही है, 'कागा चुन-चुन खाइयो' ।'

मुझको नहीं मालूम कि काँए जो कुछ उसका खाएँगे उसे कुछ भी उसका सोच है । काँओं को बुला रही है—'काँओ आओ, काँओ आओ' साग्रह कह रही है—'काँओ खाओ । काँओ खाओ ।' वह खुश है कि काँए आएँगे हैं और वे खा रहे हैं । पर एक बात है कि ओ काँओ, जो तन चुन-चुन कर खालिया जायगा उसको खालेने में खुशी से मेरी अनुमति है । वह खा-खुकर तुम सब निबटा देना । लेकिन मेरे भाई काँओ, इन दो नैयों को छोड़ देना । इन्हें कहीं मत खालेना । क्या तुम नहीं जानते कि उन नैयों में एक ग्राम बसो है जो पराए के बस है । वह नैयना पीउ की बात में है । ए कोर्या, वे मेरे नहीं हैं । मेरे तन के नहीं हैं वे पीऊ की ग्राम को बसाए रखने के लिए हैं । सो, उन्हें छोड़ देना ।'

आज सबेरे भी मैंने यह सब कुछ देखा । काँओं को रोटी खिलाकर वह उसी तरह नीचे चली गई । फिर छोटे-बड़े बहुत-से कपड़े धोकर आई । उसी भाँति उन्हें झटकर सुखा दिया । बैसे ही बाल छिटकाकर थोड़ी देर डोला फिर सहसा ही उन्हें जूड़े में संभाल कर नीचे भाग गई । जाहनवी को घर में एक बार देखा था । पत्नी ने उसे खास तौर पर देख लेने को कहा था । और उसके चल जाने पर पूछा था—'क्यों कैसी है ?'

मैंने कहा था—वह बहुत भली मालूम होती है सुन्दर भी है । पर क्यों ?'

'अपने बिरजू के लिए कैसी रहेगी ?'

'बिरजू दूर के रिश्ते में मेरा भतीजा होता है । इस साल एम० ए० में पहुँचा है ।'

मैंने कहा—'अरे ब्रजनंदन ! वह उसके सामने बच्चा है ।'

मैंने कहा—‘ओ, यह तो कोई हाईकोर्ट का जज भी नहीं कह सकता कि मुझे कुछ भी नहीं मालूम । लेकिन, आखिर जाह्नवी के बारे में मुझे क्या-क्या मालूम है, यह तो मालूम हो ।’

श्रीमती जी ने अकृत्रिम आश्चर्य से कहा—‘बिरजू के पास खत आया है, सो तुमने कुछ नहीं सुना ? आजकल की लड़कियाँ,—बस कुछ न पूछो । यह तो चलो भला हुआ कि मामला खुल गया । नहीं तो—’

क्या मामला, कहाँ, कैसे खुला और भीतर से क्या कुछ रहस्य बाहर हो पड़ा सो सब बिना जाने मैं क्या निवेदन करता ? मैंने कहा—‘कुछ बात साफ़ भी कहो !’

उन्होंने कहा—‘वह लड़की आशनाई में फंसी थी ।—पढ़ी लिखी सब एक जात की होती हैं ।’

मैंने कहा—‘सब की जाति-विरादरी एक हो जाय तो बखेड़ा टले लेकिन असल बात भी तो बताओ ।’

‘असल बात जाननी है तो जाकर पूछो उसकी महतारी से । भली समझिन बनने चली थी ! वह तो मुझे पहले ही से दाल में काला मालूम होता था । पर देखो न, कैसी सीधी भोली बातें करती थी । वह तो, देर क्या थी, सब हो ही चुकी था । बस लगन-महूर्त की बात थी । राम-राम, भीतर पेट में कैसी कालिस रबखे है, मुझे पता न था । चलो; आखिर परमात्मा ने इज्जत बचाली । वह लड़की घर में आ जाती तो मेरा मुंह अब दिखाने लायक रहता ?,

मेरी पत्नी का मुख क्यों किस भौंति दिखाने लायक न रहता, उसमें क्या विकृति आ रहती, सो उनकी बातों से समझ में न आया । उनकी बातों में रस कई भौंति का मिला, तथ्य न मिला । कुछ देर के बाद उन बातों से मैंने तथ्य पाने का यत्न ही छोड़ दिया और चुप चाप पाप-पुराय धर्म-अधर्म का विवेचन सुनता रहा । पता लगाने पर मालूम हुआ ब्रज-

नंदन के पास खुद यानी जाह्नवी का पत्र आया था। उस पत्र को देख कर मेरे मन में कल्पना हुई कि अगर वह मेरी लड़की होती तो ?— मुझे यह अपना सौभाग्य मालूम नहीं हुआ कि जाह्नवी मेरी लड़की नहीं है। उस पत्र की वाचत की बात कई बार मन में उठी है और घुमड़ी रह गई है। ऐसे समय चित्त का समाधान उड़ गया है और मैं शून्य भाव से, हमें जो शून्य चारों ओर से ढके हुए है उसकी ओर, देखता रह गया हूँ।

पत्र बढ़ा नहीं था। सीधे-सादे से उसमें वह लिखा था कि आप जब विवाह के लिए यहाँ पहुँचेंगे तो मुझे प्रस्तुत भी पायेंगे। लेकिन मेरे चित्तकी हालत इस समय ठीक नहीं हैं और विवाह जैसे धार्मिक अनुष्ठान की पवित्रता मुझ में नहीं है। एक अनुगत आप को विवाह द्वारा सेविका नहीं मिलनी चाहिए — धर्म पत्नी मिलनी चाहिए। — वह जीवन-संगीनी भी हो। वह मैं हो सकती हूँ, इसमें मुझे बहुत संदेह है। फिर भी अगर आप चाहें, आपके माता-पिता चाहें, तो प्रस्तुत मैं अवश्य हूँ। विवाह में आप मुझे लेंगे और स्वीकार करेंगे तो अपने को देदूँगी और आपके चरणों की धूलि माथे से लगाऊँगी आपकी कृपा मानूँगी। कृतज्ञ होऊँगी। पर निवेदन है कि यदि आप मुझ पर से अपनी माँग उठा लेंगे, मुझे छोड़ तक देंगे, तो भी मैं कृतज्ञ होऊँगी। निर्णय आपके हाथ है। जो चाहें, करें।

मुझे ब्रजनंदन पर आश्चर्य नहीं होता। उसने दड़ता के साथ कह दिया कि मैं यह शादी नहीं करूँगा। लेकिन उसने मुझसे अकेले मैं यह भी कहा कि चाचा जी, मैं और विवाह करूँगा ही नहीं। करूँगा तो उसी से करूँगा। उस पत्र को वह अपने से अलहिदा नहीं करता है। और मैं देखता हूँ कि उस ब्रजनंदन का ठाठ-बाट आप ही कम होता जा रहा है। सादा रहने लगा है अपने प्रति सगर्व बिल्कुल भी नहीं दीखता है। पहले विजेता बनना चाहता था, अब विनीत दीखता

हैं और आवश्यकता से अधिक बात नहीं करता। एक बार प्रदशिनी में मिल गया। मैं देख कर हैरत में रह गया ब्रजनंदन एकाएक पहिचाना भी न जाता था। मैंने कहा — ‘ब्रजनंदन कहो क्या हाल है ?’

उमने प्रणाम करके कहा—अच्छा।

वह मेरे घर पर भी आया।

पत्नी ने उसे बहुत प्रेम किया और बहुत-बहुत बधाइयां दीं कि ऐसी लड़की से शादी होने से चलो भगवान ने समय पर रक्षा कर दो जाह्नवी नाम की लड़की की एक-एक छिपी बात बिरजू की चाची को मालूम हो गई है। वह बातें—ओः ! कुछ न पूछो, बिरजू भैया ! मुँह से भगवान किसी की बुराई न करावे। लेकिन,—

फिर कहा—‘भई, अब बहुत के बिना काम कब तक हम चलायें, तू ही बता। क्यों रे; अपनी चाची को बुढ़ापे में भी तू आराम नहीं देगा सुनता है कि नहीं ?’

ब्रजनंदन चुपचाप सुनता रहा।

पत्नी ने कहा—‘और यह तुम्हें हो क्या गया है ? अपने चाचा की बात तुम्हें भी लग गई है क्या ? न हंग के कपड़े न शीत की बातें उन्हें। तो अच्छे कपड़े-लत्ते सोभते नहीं हैं तू क्यों ऐसा रहने लगा है रे ? ब्रजनंदन ने कहा—कुछ नहीं, चाची। और कपड़े घर रखे हैं। अकेले पाकर मैंने भी उससे कहा—ब्रजनंदन बात तो सही है। अब शादी करके काममें लगाना चाहिए और घर बसाना चाहिए। है कि नहीं ब्रजनंदन ने मुझे देखते हुए बड़े-बूढ़े की तरह कहा—अभी तो बहुत उमर पड़ी है चाचा जी।

मैंने इस बात को ज्यादा नहीं बढ़ाया।

अब खिड़की के पार इतवार को सोम वार को मंगल वार को और आज बुध वार को भी सबेरे-ही-सबेरे छत पर निल रोटी के मिस कौं ओं के पुकार-पुकार कर बुलाने-खिलाने वाली यह जो लड़की देख रहा हूँ

सो क्या जाह्नवी है ? जाह्नवी को मैंने एक ही बार देखा है, इस लिए, मन को कुछ निश्चय नहीं होता है । क्रुद भी इतना ही था; लावण्य शायद उस जाह्नवी में अधिक था । पर यह वह नहीं है—जाह्नवी नहीं है ऐसा दिलासा मैं मन को कनिक भी नहीं दे पाता हूं । सवेरे-ही-सवेरे इतने कौण डुला लिये हैं कि खुद दिखती ही नहीं, काले-काले वे-ही-वे दिखते हैं । और वे भी उसफे चारों ओर ऐसी छीन-भपट-सी करते हुए उड़ते रहते हैं आनों बड़े स्वाद से, बड़े प्रेम से, चोंट-चोंट कर उसे खाने के लिए आपस में बड़ा बड़ी मचा रहे हैं । पर उनसे घिरी वह कहती है, “आओ, कौओ, आओ ।” जब वे आ जाते हैं तो गाली है —

“कागा चुन चुन खाइयो...!”

और तब जाने कहाँ कहाँ के कौण इकट्ठे के इकट्ठे कांथों-कांथों करते हुए चुन-चुन कर खाने लगते हैं और फिर भी कांथों कांथों करके उससे भी ज्यादा मांगने लगते हैं; तब वह चीख मचा कर चिल्लाती है—कि ‘ओ रे कागा’ नहीं, ये—

“दो नैना मत खाइयो ! मत खाइयो—

पीउ मिलन की आस ।”

